॥ श्री ॥

॥ अथ भर्तृहरिकृतम् ॥

॥ नीतिशतकम् प्रारभ्यते ॥

॥ परमात्मने नमः ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्र मूर्तये । स्वानुभूत्येकसाराय नमः शान्ताय तेजसे ॥ १ ॥

(भाषा टीका) अथ भर्तृहरिकृत प्रथम नीतिशतक की भाषा टीका लिखते हैं दशोदिशा और त्रयकालादि में परिपूर्ण अनन्त चैतन्यमूर्ति केवल अपने ही अनुभव ज्ञान से बोध होने योग्य शांत और तेजोमय रूप ईश्वर को नमस्कार है ॥ १ ॥

यांचिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्य सक्तः ॥ अस्मत्कृते च परितुष्यति

काचिदन्या धिक्तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥ २ ॥

(भा० टी०) जिस की मैं निरन्तर चिन्ता करता हूं सो मुझसे विरक्त होकर दूसरे जन की इच्छा करती है वह और जन अन्य स्त्री पर आसक्त है और वह अन्य स्त्री हम से प्रसन्न है इस लिये मेरी प्रिया को धिक्कार है जो दूसरे जन को चाहती है और दूसरे जन को जो अन्य स्त्री को चाहता है और इस अन्य स्त्री को जो फिर मुझ से प्रसन्न है और मुझे जो इस से फंसा हूं और कामदेव को भी धिक्कार है कि जिस की यह प्रेरणा है ॥ २ ॥

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः । ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न रंजयति ॥ ३ ॥

(भा० टी०) अज्ञानी को सुख से सुधार सकते हैं और ज्ञानी को अति सुख से, परन्तु अल्पज्ञ नर को ब्रह्मा भी नहीं सुधार सक्ते हैं ॥ ३ ॥

प्रसह्यमणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रांकुरात् समुद्रमपि संतरेत्प्रचलदुर्मिमालाकुलम् ॥ भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि

पुष्पवद्धारयेत् नतु प्रतिनिविष्ठमूर्खजन चित्तमाराधयेत् ॥ ४ ॥

(भा० टी०) बलात्कार से मगर के मुख के डाढोंकी नोक से जड़में मणिको मनुष्य निकालसक्ता है और चञ्चल तरङ्ग भरे हुए समुद्र को तैर कर पार हो सक्ता है और क्रोधित सर्प को फूल की नांई मनुष्य सिर पर धार सक्ता है परन्तु मूर्ख का चित्त जो असत वस्तु में धंसा हुआ है उसे कोई नहीं विलगा सक्ता है ॥ ४ ॥

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन् पिबेच्चमृगतृष्णिकासु सलिलंपिपासार्दितः॥ कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत् नतु प्रतिनिविष्टमूर्खजन चित्तमाराधयेत् ॥ ५ ॥

(भा० टी०) यदि यत्न से पेरे तो बालू में तेल पावे और मृग तृष्णा में प्यासा कदाचित् जलभी पिये और ढूंढने से खर का सींग भी मिल सके परन्तु मूर्ख का चित्त जो असत वस्तु में धंसा है उसे कोई नहीं अलग कर सक्ता है ॥ ५ ॥

व्यालं बालमृणालतंतु भिरसौ रोद्धं,

समुज्जृम्भतेछेत्तुं वज्रवणीाञ्छि रीष-
कुसुमप्रांतेनसन्नह्यते ॥ माधुर्यं मधु-
बिंदुना रचयितुं क्षाराम्बु,धेरीहतेनेतुं-
वाञ्छतिय:खलान्पथिसतांसूक्तै:सुधा
स्यंदिभि: ॥ ६ ॥

(भा० टी०) वह मनुष्य कोमल कमल की दंठी के सूत से हाथी को बाधा चाहता है और सिरिस के फूल की पांखुरी से हीरे को बेधा चाहता है और खारे समुद्र को एक बूंद मधु रस से मीठा करना चाहता है जो खलों को अपने अमृत समान उपदेश से सत् मार्ग में लाने की इच्छा करता है ॥ ६ ॥

स्वायत्त मेकान्त गुणं विधात्रा
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः॥विशेषतः
सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपंडि
तानाम् ॥ ७ ॥

(भा० टी०) मौन अर्थात् चुप रहना एक तो अपने आधीन है और भी इस में अनेक गुण हैं विधाता ने इसको अज्ञानता का ढकना बनाया है और विशेष करके सर्वज्ञों की सभा में मूर्खों का मौन ही भूषण है॥७॥

यदा किञ्चिज्ज्ञो ऽहंद्विपइवमदान्धः समभवम् तदासर्वज्ञोऽस्मीत्यभवद् वलिप्तं मम मनः यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतम् तदा मूर्खोऽस्मीतिज्वरइवमदो मे व्यपगतः ८

(भा० टी०) जब मैं अल्पज्ञ रहा हाथी की नाईं मदांध था तब मेरे मन में ऐसा गर्व हुआ कि मैं सर्वज्ञ हूं और जब मुझे कुछ कुछ पण्डितों से ज्ञान प्राप्त हुआ तब मैंने अपने को मूर्ख जाना और मद मेरा ज्वर की नांईं उतर गया ॥ ८ ॥

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगर्हि जुगुप्सितम् निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम् ॥ सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते नहि गणयति क्षुद्रो जंतुः परिग्रहफल्गुताम् ॥ ९ ॥

(भा० टी०) कीडों के समूह से भरा लार से भींगा दुर्गंध से भरा हुआ निंदित निरस और निर्मांस

मनुष्य के हाड को निर्लज्ज स्वानप्रीति पूर्वक खातेसमय इन्द्र को भी अपने पास खडे हुए देखकर शंका नहीं करता इस से यह सिद्ध हुआ कि क्षुद्रजीव जिस वस्तु को ग्रहण करता है उसकी स्वच्छता पर ध्यान नहीं करता ॥ ९ ॥

शिरःशार्वं स्वर्गात्पतति शिरसस्तत्क्षितिधरम् महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ॥ अधो गङ्गा सेयं पदमुपगतास्तोकमथवा विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥ १० ॥

(भा० टी०) यह गंगा पहिले स्वर्गसे शिवजी के मस्तक मर गिरी फिर वहा से ऊंचे पर्वत पर और पर्वत से पृथ्वी पर और पृथ्वी से समुद्र में योंक्रम से नीचे ही नीचे गिरती गई और स्वल्प भी होती गई तैसे ही विवेक भ्रष्ट लोगभी सर्वदा सौ सौ प्रकार से गिरते ही जातेहैं ॥ १०

शक्योवारयितुं जलेन हुतभुक्छत्रेण सूर्यातपो नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ । व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्र प्रयोगैर्विषम

सर्वस्यौषधमस्तिशास्त्रविहितंमूर्खस्य नास्त्यौषधं ॥ ११ ॥

(भा० टी०) जल से अग्नि का निवारण हो सक्ता है छाता से धूप का चोखे अंकुश से उन्मत्त हाथी का दण्ड से दुष्ट बैल और गदहे का नाना प्रकार की औषधियों से व्याधि का और मंत्र प्रयोग से विष का योग शास्त्र की विधि से सब की औषधि है परन्तु मूर्ख की औषधी नहीं हो सकती ॥ ११ ॥

साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः । तृणं न खादन्नपि जीवमान स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥ १२ ॥

(भा० टी०) साहित्य और सङ्गीत शास्त्र की कला से जो मनुष्य हीन है वह साक्षात् पूंछ और सींग रहित पशु है तृण नहीं खाता और जीता है यह उस पशुवों का परम भाग्य है ॥ १२ ॥

येषां न विद्या न तपो न दानम् ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः । ते मर्त्यलोके भुवि भार भूता मनुष्य रूपेण मृगाश्च-

रन्ति ॥ १३ ॥

(भा० टी०) जिन को विद्या तप दान ज्ञान शील गुण और धर्म नहीं वे मृत्यु लोक में पृथ्वी पर भार रूप साक्षात् पशु हैं मनुष्य के स्वरूप से विचरते हैं ॥ १३ ॥

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रांतं वनचरैः सह ।
नमूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि १४

(भा० टी०) पर्वत और बन में बनचरों के संग भ्रमण करना अच्छा परन्तु मूर्ख जनका संसर्ग इन्द्रभवन में भी बुरा है ॥ १४ ॥

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरागिरः शिष्यप्रदेयागमाविख्याताःकवयोवसंतिविषये यस्यप्रभोर्निर्धनाः । तज्जाड्यंवसुधाधिपस्य कवयोह्यर्थंविनापीश्वराः कुत्साः स्युः कुपरीक्षकाहिमणयो यैरर्घतः पातिताः ॥ १५ ॥

(भा० टी०) शास्त्रोक्त शब्दों से जिन की बाणी सुंदर है और शिष्यों के पढाने योग्य जिन की विद्या है और वे आप भी प्रसिद्ध हैं ऐसे कवि जिस राजा के देश में निर्धन रहते हैं उस में जडता राजा ही की है और

कविलोग तो बिना द्रव्यके भी श्रेष्ठ ही हैं जिन्होंने मणियों का मोल घटाया वे परीक्षा करने वाले ही खोटे हैं ॥ १५ ॥

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिंपरां कल्पांतेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमंतर्धनम् येषांतान्प्रति मानमुज्झतनृपाः कस्तैः सह स्पर्धते ॥ १६ ॥

(भा० टी०) चुराने वाले को नहीं देख पडता। और सदा सुख की वृद्धि करता है और निरन्तर मांगने वालों को दिया जाय तो परम वृद्धि को प्राप्त होता है और कल्पांत में भी जिसका नाश नहीं ऐसा विद्या रूपी अन्तर धन जिन के पास है तिनसे हे राजा लोगो अभिमान छोड दो क्योंकि उनके समान जगत में दूसरा कौन है ॥ १६ ॥

अधिगत परमार्थान्पण्डितान्मावमंस्थास्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि । अभिनवमदलेखाश्यामगण्ड

स्थलानाम् न भवति विसतन्तुर्वारणां वारणानाम् ॥ १७ ॥

(भा० टि०) जिनको परमार्थ अर्थात् मोक्ष पर्यंत के साधन प्राप्त हैं ऐसे पण्डितों का अपमान मत करो क्योंकि उन को तृण के समान लघु लक्ष्मी तुम्हारी न रोक सकेगी जैसे नवीन मद की धारा के नांई शोभित श्याम मस्तक वाले हाथी को कमल की दंठी का सूत नहीं रोक सक्ता ॥ १७ ॥

अम्भोजिनी वननिवास विलास मेव हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता। नत्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धाम् वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौसमर्थः। १८।

(भा० टी०) हंस पर यदि विधाता कोप करे तो उसका कमल बनमें निवास और वहां का विलास नष्ट कर सक्ता है परन्तु उसके दूध और जल विलगाने की प्रसिद्ध पाण्डित्यता (चतुराई)की कीर्ति को विधाता भी नहीं नाश करसक्ता ॥ १८ ॥

केयूरा न विभूषयंति पुरुषं हारा न चंद्रो-ज्ज्वला न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं

नालंकृता मूर्द्धजाः । वाण्येका समलं-
करोति पुरुषंया संस्कृता धार्यते क्षीयंते
खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं
भूषणं ॥ १६ ॥

(भा० टी०) बाजूबन्द कंकंण और चन्द्रमाके समान उज्वल मोतियों के हार स्नान चंदन लेपन फूलों का शृङ्गार और सुधरे हुए केशादि पुरुषों को भूषित नहीं करसक्ते केवल वह बाणी जो संस्कार युक्त धारण की गई हो सो पुरुषों को भूषित करसक्ते है और सब भूषण अवश्य क्षय होजाते हैं परन्तु केवल बाणी हीका भूषण भूषण की ठौर रहजाते हैं ॥ १९ ॥

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकंप्रच्छन्न-
गुप्तं धनम् विद्याभोगकरी यशः सुख
करी विद्या गुरूणां गुरुः । विद्या बंधु
जनो विदेशगमने विद्या परंदैवतम्
विद्या राजसुपूजिता नहि धनंविद्या
विहीनः पशुः ॥ २० ॥

(भा० टी०) विद्या रूपी वस्तु मनुष्य का अधिक

रूप और छिपा हुआ अन्तरधन है और विद्याही भोग यश और सुखकी सम्पादन करनेवाली और गुरुओंकी गुरू है परदेशमें विद्याही बन्धुजन है और विद्याही परम देवता है और विद्याही राजा लोगोंमें पूज्य है कुछ धन नहीं पूजित है इसलिये विद्या विहीन नर पशु है॥२०॥

क्षांतिश्चेत्कवचनेकिं किमरिभि:क्रोधोस्तिचेद्देहिनाम् ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्। किं सर्पैर्यदिदुर्जना: किमुधनैर्विद्याऽनवद्या यदिव्रीडा चेत्किमु भूषणै:सुकविता यद्यस्तिराज्येनकिम्॥ २१ ॥

(भा० टी०) यदि क्षमा होतो कवच का क्या काम है और जिस मनुष्य में क्रोधहै तो उसे शत्रु की क्या आवश्यकता है यदि जाति है तो उसे अग्निका क्या प्रयोजन है और जो अपने इष्टमित्र समीप हैं तो दिव्य औषधियों से क्या फल है जिन के दुर्जन विद्यमान हैं उस का सर्प और अधिक क्या करेंगे और जिस के निर्दोष विद्या है तो उसे धन सञ्चय से क्या होगा और जिसे लज्जा है तो उसे फिर और भूषण क्या है और जिस को सुन्दर कविता है उस के आगे राज्य क्या है॥ २१

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं सदा दुर्जने प्रीतिः साधुजने नयोनृप जने विद्वज्जनेष्वार्जवम् । शौर्यं शत्रु जने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता येचैवं पुरुषाःकलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥ २२ ॥

(भा० टी०) अपने कुटुंब के विषे उदारता परजन पर दया दुर्जन से सदा शठता साधु से प्रीति राज सभा में नीति पण्डितों से नम्रताई शत्रु जनों में सूरता बड़े लोगों में क्षमा और स्त्रियों में धूर्तता जो पुरुष इस भांति इन सब कलाओं में निपुण हैं तिन्हीं में लोकाचार की स्थिति है अर्थात लोकमें वेही अच्छे होते हैं ॥ २२ ॥

जाड्यंधियोहरतिसिञ्चतिवाचिसत्यम् मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति । चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम् सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ २३ ॥

(भा० टी०) बुद्धि की जड़ता को हरती बाणी में

सत्यको सींचती मानको बढाती पाप को दूर करती चित्त को प्रसन्न रखती और दिशाओं में कीर्ति को विस्तृत (फैलाती) करती है देखो तो यह सतसंगति पुरुष को क्या नहीं करती है ॥ २३ ॥

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः । नास्ति येषां यशः काये जरामरणजंभयम् ॥ २४ ॥

(भा० टी०) ऐसे पुण्यवान रससिद्ध कवीश्वर जिन्हें नौ रस सिद्ध हैं उन के यशरूपी काया में जरा मरण का भय नहीं होता ॥ २४ ॥

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनोनिः क्लेशलेशं मनः । आकारो रुचिरःस्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखम् । तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ संप्राप्यते देहिना ॥ २५ ॥

(भा० टी०) सदाचरण वाला पुत्र पतिव्रता स्त्री सर्वदा अनुग्रह करने वाला स्वामी प्रेमी मित्र कुटुम्ब के लोग अवञ्चक मन क्लेश के लेश से रहित सुन्दर स्वरूप

स्थिर सम्पति और विद्या से शोभायमान मुख यह सब उस मनुष्य को प्राप्त होतेहैं जिसपर जगतपिता मनोर्थ केदाता हरिभगवान् प्रसन्न हों ॥ २५ ॥

प्राणाघातान्निवृत्तिःपरधनहरणेसंयमः सत्यवाक्यं काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावःपरेषाम् तृष्णांस्रोतोविभङ्गोगुरुषुचविनयःसर्वभूतानुकम्पा सामान्यःसर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिःश्रेयसामेषपंथाः ॥ २६ ॥

(भा० टी०) जीवहिंसा से निवृत रहना पराए धन० हरण करनेसे संयम न करना सत्य बोलना समय पर यथा शक्ति दान देना परस्त्रियों की कथा में मौन रहना तृष्णा के प्रवाह को तोडना बडे लोगों में नम्र रहना प्राणी मात्र पर दया रखना सब शास्त्रों में प्रवृति रखना और नित्यनैमित्तिक कर्मों को न छोड़ना यह सब मनुष्यों के कल्याण का पंथ है ॥ २६ ॥

प्रारभ्यतेनखलुविघ्नभयेननीचैःप्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः। विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारभ्य

न्योत्तमजना न परित्यजन्ति ॥ २७ ॥

(भा० टी०) विघ्न के भय से नीचजन कार्य का आरंभही नहीं करते और मध्यमजन आरंभ कर विघ्नको देखकार्य को छोड़ बैठते हैं और उत्तमजन बारंबार विघ्न होनेसे भी कार्य्य का आरम्भ करके परित्याग नहीं करते अर्थात् उस कार्य्य को पूराही करके छोडते हैं ॥२७॥

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभंगेप्य सुकरम् त्वसंतो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः । विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महताम् सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ ॥ २८ ॥

(भा० टी०) सत्पुरुष लोग असंतोष से कुछ यांचना नहीं करते और स्वल्पधनवाले सज्जन से भी नहीं यांचते न्यायोक्त अपनी जीविका उन्हें प्रियहै प्राणजाने पर भी मलिनकर्म उन से दुष्कर है बिपत्ति में ऊंचे बने रहते हैं और श्रेष्ठ लोगों के आचरण को धारण किए रहते हैं यह तरवार की धार से कठोरव्रत को उन्हें किसने उपदेश किया मानो ब्रह्मा ने उपदेश किया है ॥ २८ ॥

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोपि शिथिल प्रायोपि कष्टांदशामापन्नोपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषुनश्यत्स्वपि। मत्तेभेन्द्र विभिन्नकुम्भकवलग्रासै कवद्धस्पृहः किंजीर्णंतृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥ २९ ॥

(भा० टी०) भूख के मारे दुर्बल वृद्धावस्था से क्लेशित शक्ति हीन कष्ट की दशा को प्राप्त तेजहीन और प्राण भी नाशहोने पर हो तोभी मत्तगजराज के विदारे हुए मस्तक के मांस के ग्रास का सर्वदा अभिलाषा करनेवाला सिंह जो मान से बड़ा अग्रगण्य है वह क्या सूखी घास खायगा ॥ २९ ॥

स्वल्पं स्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थि गोः श्वा लब्ध्वा परितोषमेति नतुतत्तस्य क्षुधाशान्तये। सिंहों जम्बुकमंकमागतमपित्यक्त्वा निहन्ति द्विपम् सर्वः कृच्छ्रगतोऽपिवाञ्छति

जनः सत्वानुरूपं फलं ॥ ३० ॥

(भा० टी०) छोटा सा हाड का टुकड़ा कुछ पित्त और चर्बी लगा हुवा मलिन और निर्मांस पाकर कुत्ता प्रसन्न होजाता है यद्यपि उस से उस की भूख नहीं जाती और सिंह गोद में आए हुए स्यार को छोड़कर भी हाथी को जाकर मारता है इस से यह सिद्ध हुआ कि समस्त जन कैसे भी दुःखी होवे परन्तु वे अपने अपने पुरुषार्थ के अनुसार फल की इच्छा करते हैं ॥ ३० ॥

लांगूल चालन मधश्चरणावपातम् भूमौनिपत्यवदनोदरदर्शनञ्च । श्वा पिण्डदस्य कुरुतेगजपुङ्गवस्तु धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुंक्ते ॥ ३१ ॥

(भा० टी०) पूंछ हिलाना चरणों पर झुक कर सिर देना पृथ्वी पर लोट के पेट और मुंह दिखलाना इत्यादि दीनता कुत्ता टुकड़ा देने वाले के आगे करता है और गजराज अपने आहार देनेवाले की ओर एकबेर गंभीरता से देखकर अनेक भांति की चतुराई से भोजन करता है ॥ ३१ ॥

परिवर्तिनि संसारे मृतःको वा न जायते । स जातो येन जातेन याति वंशःसमुन्न-

तिम् ॥ ३२ ॥

(भा० टीका०) वही पुरुष जगत में जनमा जिनके जन्मे से वंश की उन्नति हो नहींतो इस चक्र की नाईं घूमते भए संसारमें मरके कौन नहीं जन्म पाता है॥३२॥

कुसुमस्तवकस्येव द्वे गतीस्तो मनस्विनाम्। मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा ॥ ३३ ॥

(भा० टी०) फूल के गुच्छे की नाईं श्रेष्ठजनो की रीति दो प्रकार की है या तो सबलोगों के मस्तकही पर शोभित होंगे अथवा बनहीमें शुष्क (सूख) होके समाप्त होजायंगे ॥ ३३ ॥

संत्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयःसंभाविताः पञ्चषास्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ॥ द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भासुरौ भ्रातः पर्वणि पश्य दानवपतिःशीर्षावशेषीकृतः ॥ ३४ ॥

(भा० टी०) बृहस्पति आदि और भी पाच सात

ग्रह आकाश में श्रेष्ठ हैं पर विशेष पराक्रम की इच्छा करनेवाला राहु तिनके प्रति वैर नहीं करता है हे ! भाइयो देखो की अमावस और पूर्णिमा को दानवपति राहु जो केवल मस्तकही मात्र रहगया है तिसपर भी दोहो दिनेश्वर शोभाकर सूर्य्य और चन्द्रमा पूर्ण तेजवालों को जाकर ग्रसता है ॥ ३४ ॥

वहति भुवन श्रेणीं शेषः फणाफणा कस्थिताम् । कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स विधार्यते ॥ तमपि कुरुते क्रोडा धीनं पयोधिरनादरादहह महतांनिःसीमानश्चरित्रविभूतयः ॥ ३५ ॥

(भा० टी०) चौदा भुवन की पंक्ति को शेषजी अपने फन पर धारण किये हैं कच्छपजी अपनी पीठ के मध्य में तिन शेषजी को भी धरे हैं और उन कच्छप को भी समुद्रने अनादर से शूकर के आधीन करदिया है इससे यह सिद्ध हुवा कि महज्जनों के चरित्र की शोभा की सीमा नहीं है ॥ ३५ ॥

वरं पक्षच्छेदःसमदमघवन्मुक्तकुलिश प्रहारैरुद्गच्छद्बहुहल दहनोद्गार गुरुभिः

तुषाराद्रेः सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे नचासौसंपातः पयसि पयसांपत्युरुचितः ॥ ३६ ॥

(भा० टी०) मद में भरे हुए इन्द्र के चलाये वज्र की चोट को जिसकी अग्नि की ज्वाला अतिकाठिन है उससे मरजाना अच्छा रहा परन्तु अपने पिता हिमाचल को क्लेश के विवश छोड उसके पुत्र मैनाक को उचित न था कि जलराज समुद्र में भागकर कूदके अपनी पक्ष बचावे ॥ ३६ ॥

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टःप्रज्वलति सवितुरिव कांतः ॥ तत्तेजस्वी पुरुष परकृतविकृतिं कथं सहते ॥ ३७ ॥

(भा० टी०) रवि कान्तमणि यदि अचेतन है तोभी सूर्य्य के किरण रूपी पादस्पर्श करने से जल उठता है ऐसे ही तेजस्वी पुरुष परकृत अनादर को कैसे सहै ।३७।

सिंहः शिशुरपिनिपतति मदमलिनकपोलभित्तिषुगजेषुप्रकृतिरियंसत्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥ ३८ ॥

(भा० टी०) सिंह यद्यपि बच्चाभी हो तो मद मलीन हैं

बडे क्रोध वाले हाथी पर पड़ता है तेजस्वियों का यह स्वभावही है कुछ तेज का हेतु अवस्था नहीं होती।३८।

जातिर्यातु रसातलं गुणगणास्तस्याप्यधो गच्छताच्छीलं शैलतटात्पततवभिजनःसन्दह्यतां वह्निना ॥ शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाःसमस्ताइमे ॥ ३९ ॥

(भा० टीका०) जाति रसातल में जाय और सर्व गुण उस से भी अधिक नीचे जांय और शील पर्वत से गिर के नाश होजाय और कुटुम्ब के लोग अग्नि में जांय और सूरतारूपी शत्रु पर वज्र पड़े परन्तु हमको केवल द्रव्य ही से काम है कि जिसके बिन सर्व गुण तृणके समान हैं ॥ ३९ ॥ इति मान शौर्य प्रशंसा ॥

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव । अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव त्वन्यःक्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥४०॥

(भा०टी०) सब इन्द्रिया वही हैं और व्यौहार भी सब वही है और वही प्रबल बुद्धि भी है और वचन भी वैसे ही हैं परन्तु एक द्रव्य की उष्णता बिना वही पुरुष क्षण मात्र में और का और हो जाता है यह विचित्र गति है ॥ ४० ॥

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ॥ स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाःकाञ्च-नमाश्रयन्ति ॥ ४१ ॥

(भा०टी०) जिसके पास द्रव्य है वही नर कुलीन पण्डित गुणज्ञ वक्ता और दर्शन योग्य है इससे यह सिद्ध हुआ कि सब गुण सुवर्ण के आश्रय रहते हैं ॥ ४१ ॥

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः स-ङ्गात्सुतो लालनाद् विप्रोऽनध्ययना त्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्मैत्री चाप्रणयात्समृद्धि रनयात्त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥ ४२ ॥

(भा०टी०) दुष्ट मन्त्रियों के मन्त्र से राजा, राजा के सङ्गत से तपस्वी, दुलार से पुत्र, न पढने से ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, खल की उपासना से शील, मद्यपान से लज्जा, बिना देखे से खेती, परदेश में रहने से स्नेह, अनम्रता से मैत्री, अनीति से वृद्धि, और प्रमाद पूर्वक लुटाने से धन, नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ॥ यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ ४३ ॥

(भा०टी०) दान भोग और नाश यही तीन धन की गति है जिसने नहीं दिया और जो अपने भोगमें न लाया उसके धनकी नाशरूप तिसरी गति होती है ॥४३॥

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ॥ कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालललना ॥ तनिम्ना शोभंते गलितविभाश्चार्थिषु जनाः ॥ ॥ ४४ ॥

(भा० टी०) सानसे खरादी हुई मणि, संग्राम के

जीतनेवाला खड्गसे हत, मदसे उतरा कृश हाथी, शरद ऋतुकी स्वल्पनदी दूजका चंद्रमा सुरति की मली हुई बाला स्त्री, और अतिदान देनेसे दरिद्री, इत्यादि सबकी दुर्बलताही की शोभा है ॥ ४४ ॥

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये स पश्चात्संपूर्णो कलयति धरित्रीं तृणसमाम्। अतश्चानैकान्त्याद्गुरुलघुतयार्थेषुधनिना मवस्था वस्तूनि प्रथयति च सङ्कोचयति च ॥ ४५ ॥

(भा० टी०) जब कोई परिक्षीण अर्थात् निर्धन अवस्थामें होता है तब एक पसर जवकी इच्छा करता है और वही मनुष्य जब सम्पूर्ण संपन्न अर्थात् धनिक अवस्थामें होजाताहै तब पृथ्वीको तृणसमान गिनताहै इस कारण यही दोनो चंचल अवस्था पुरुषको गुरु और लघु बनाती है और वस्तुओंकोभी फैलाती और समेटती हैं ॥ ४५ ॥

राजन्दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ॥ तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे

नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ॥ ४६ ॥

(भा० टी०) हे राजा ! जो पृथ्वीरूपी धेनुको दुहा चाहते हो तो बछरेके समान प्रजालोकोंको पोषण करो जब यह प्रजारूपी बछडा अच्छी भांतिसे निरन्तर पोषा जायगा तब कल्पलताके तुल्य पृथ्वी अनेक प्रकार के फल देगी ॥ ४६ ॥

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ॥ नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च वेश्याङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा॥४७॥

(भा० टी०) कहीं सत्य कहीं असत्यवादिनी कहीं कठोर कहीं प्रियभाषिणी कहीं हिंसाकरनेवाली कहीं दयालु कहीं लोभी कहीं उदार कहीं नित्यप्रति बहुतसा द्रव्य उठानेवाली और कहीं बहुत ही संचय करने वाली यह राजनीति वेश्याकी नांई अनेकरूपसे रहतीहै ॥ ४७ ॥

विद्या कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ॥ येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्तः कोऽर्थस्तेषां पार्थि-

वोपाश्रयेण ॥ ४८ ॥

(भा० टी०) विद्या, कीर्ति ब्राह्मणोंका पालन,दान भोग और मित्रोंकी रक्षा, जिनमें ये गुण सम्पादन न हुये तिन्हे राजाकी सेवाका क्या फल है ॥ ४८ ॥

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं तत्प्राप्नोति मरुस्थलेपि नितरां मेरौततो नाधिकम् ॥ तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा माकृथाः कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥ ४९ ॥

(भा० टी०) विधातानें जो अपने ललाटमें लिख दिया है किंचित्धन अथवा बहुत चाहे मारवाडकी भूमि मेंभी जाय बैठे उसे वह निरन्तर प्राप्त होगा उससे अधिक सुमेरुपरभी जानेसे न मिलेगा इसलिये धैर्य धरो और धनवालोंके निकट वृथा याचना न करो क्योंकि देखो कूप और समुद्रमें घडा समानही जल ग्रहण करताहै ।

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः ॥ किमम्भोदवरास्माकं कार्प-

ण्योक्तिः प्रतीक्ष्यते ॥ ५० ॥

(भा० टी०) तुमभी मुझ पपीहाके आधार हो हे श्रेष्ठ मेघ यह बात किसपर नहीं प्रसिद्ध है अब तुम हमारी दीनताका क्या पैंडा देखते हो ॥ ५० ॥

रेरेचातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयतामम्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ॥ केचिद्वृष्टिभिरार्द्र-यन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद्वृथा यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं बचः ॥ ५१ ॥

(भा० टी०) अरे चातक सावधान मनसे क्षणमात्र हमारी बात सुन की मेघ आकाशमें बहुतसे हैं परन्तु सब ऐसे नहीं कितने तो वर्षाकर पृथ्वीको पूर्ण कर देते हैं और कितने वृथाही गर्जके चले जाते हैं हेमित्र इसलिये जिसजिसको तूं देख उसीके आगे दीनता के वाक्य मत कह ॥ ५१ ॥

अथ दुर्जननिन्दा ॥

अकरुणात्वमकारणविग्रहः परधने पर योषिति च स्पृहा ॥ सुजनबन्धुजनेष्व

सहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्म नाम् ॥ ५२ ॥

(भा० टी०) करुणा न करना और अकारण विग्रह अर्थात् लडाई करना पराये धन और स्त्रीकी सर्वदा इच्छा रखना अपने कुटुम्ब और मित्रकी न सहना यह बातें दुष्टजनों की स्वाभाविक सिद्ध हैं ॥ ५२ ॥

दुर्जनःपरिहर्तव्यो विद्यया भूषि तोऽपि सन् । मणिनालङ्कृतः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥ ५३ ॥

(भा० टी०) दुर्जन यद्यपि विद्यावान भी हो तो भी परित्यागही के योग्य होता है जैसे मणिसे भूषित सर्प क्या भयङ्कर नहीं होता ॥

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि ॥ तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ॥ ५४ ॥

(भा० टी०) लज्जावान्पुरुषको शिथिल, व्रतधारी को दंभी, पवित्रको कपटी, शूरको निर्दयी, सीधेको मूर्ख, प्रियकहनेवालेको दीन, तेजस्को गर्वीला, वक्ताको बकवादी, और स्थिरचित्तवालेको आलसी, कहते हैं इससे यह जानपडता है की गुणियों में कौन ऐसा गुण कि जिसे दुर्जनोंने कलङ्क नहीं लगाया ॥ ५४ ॥

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥ सौजन्यं यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः सद्विद्या यदि किं जनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ ५५ ॥

(भा० टी०) लोभ जिसमें है फिर उसमें और अपगुण क्या चाहिये जो कुटिल है उसे और पातक करने की क्या आवश्यकता है, सत्यवक्ताको तपका क्या प्रयोजन है, जिसका मन शुद्ध है उसे तीर्थकरने से क्या अधिक फल होगा, जो सज्जन है उन्हे मित्र और कुटुम्ब की क्या कमी है, यशी पुरुषोंकी यशसे बढकर क्या भूषण है, सद्विद्यावालेको और दूजे धनकी क्या अपेक्षा है, जिसका सर्वत्र अपजस है उसे मृत्यु पानेसे क्या

अधिक होगा ॥ ५५ ॥

शशी दिवसधूसरो गलित यौवना कामिनीसरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः ॥ प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो ॥ नृपाङ्गणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ॥ ५६ ॥

(भा० टी०) दिनका मलीन चन्द्रमा, यौवनहीन स्त्री विना कमलका सरोवर, (तालाब) सुन्दररूपवाला मूर्ख धनवान् कृपण, सज्जन दरिद्र, और राजसभा में खल ये सातों हमारे हृदय में कांटेकी तरह चुभते हैं ॥५६॥

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम् ॥ होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥ ५७ ॥

(भा० टी०) प्रचण्ड क्रोधवाले राजाओंका कोई मित्र नहीं जैसे होमकरनेवालेकोभी अग्नि छूजाय तो जलाही देता है ॥ ५७ ॥

मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुलो जल्पको वा ॥ धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा

दूरतश्चाप्रगल्भः ॥ क्षान्त्या भीरुर्यदि नसहते प्रायशो नाभिजातः॥सेवाधर्मः परमगहनोयोगिनामप्यगम्यः॥ ५८॥

(भा० टी०) मौनरहनेसे गूंगा, वक्ता होनेसे वातुल, और बकवादी समीपहोनेसे ढीठ, दूर रहनेसे मूर्ख, क्षमा करनेसे कादर, और न सहने से कुलहीन, कहलाता है तात्पर्य यह है कि सेवा धर्म्म परम कठिन है योगियोंको भी अगम्य है ॥ ५८ ॥

उद्भासिताखिलखलस्य विशृङ्खल-स्य ॥ प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्म-वृत्तेः ॥ दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्वि षोस्य ॥ नीचस्य गोचरगतैः सुखमा स्यतेकैः ॥ ५९ ॥

(भा० टी०) अनेक खलोंको प्रकाश करनेवाला निरंकुश कि जिसके पूर्वजन्मके मंदअधम कर्म उदय हो रहे हैं और दैवकरके धनभी उसे प्राप्त है और गुणोंसे द्वेष करनेवाला ऐसे नीचके वश रहकर किसने सुख पाया है ॥ ५९ ॥

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण ॥ लघ्वी

पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ॥ दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना ॥ छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥ ६० ॥

(भा० टी०) आरंभमें बहुत लंबी चौडी फिर क्रमसे पूर्वार्द्ध दोपहरकी छायाके समान खलोंकी मैत्री क्षण क्षण घटती जाती है और सज्जनोंकी मैत्री पहिले बहुत किंचित् फिर क्रमहीक्रम परार्द्ध दोपहरकी छायाके नाईं प्रतिक्षण बढती जाती है ॥ ६० ॥

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम् ॥ लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥ ६१ ॥

(भा० टी०) हरिण, मछली, और सज्जन तृण, जल, और संतोष करके अपनी जीविका करते हैं पर व्याध धीवर और कुटिललोग विनाप्रयोजनही इनसे संसारमें वैर रखते हैं ॥ ६१ ॥

इति दुर्जनप्रशंसा । अथ सुजननिन्दा ।

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता ॥ विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम् भक्तिःशूलिनि

शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते येषु वसंति निर्मलगुणास्तेभ्यो
नरेभ्यो नमः ॥ ६२ ॥

(भा० टी० ॥) सज्जनोंकी सत्संगकी वांछा, पराये गुणसे प्रीति, बडे लोगोंसे नम्रता, विद्यामें व्यसन, अपनी ही स्त्रीसे रति, लोकनिंदासे भय, महेश्वरमें भक्ति, आत्माके दमनकी शक्ति और खल के संग का त्याग ये निर्मल गुण जिन पुरुषोंमें हैं तिन्हें हम नमस्कार करतेहैं ॥ ६२ ॥

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा ॥ सदसि
वाक्पटुता युधि विक्रमः ॥ यशसि
चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ ॥ प्रकृतिसिद्ध-
मिदंहि महात्मनाम् ॥ ६३ ॥

(भा० टी०) विपत्तिमें धैर्य, ऐश्वर्यमें क्षमा, सभाके मध्य वार्तामें चतुराई, संग्राममें पराक्रम, अपने यशमें रुचि और शास्त्रमें व्यसन ये बातें महात्माओंमें स्वाभाविक सिद्ध होती हैं ॥ ६३ ॥

प्रदानंप्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्यु-

प्रकृतेः ॥ अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ ६४ ॥

(भा० टी०) दानको गुप्त रखना, अपने घर आये हुए पुरुषका सत्कार करना, पराया भला कर मौन रहना दूसरेके किये हुये उपकारको सभामें वर्णन करना, धन पाकर गर्व न करना, और पराई चर्चामें उसके निरादर की बात बचाकर कहना, यह तरवारकी धारके समान कठिन व्रत सत्पुरुषोंको किसने उपदेश कियाहै ॥ ६४ ॥

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता मुखे सत्या वाणी विजयिभुजयोर्वीर्यमतुलम् ॥ हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मंडनमिदम् ।६५।

(भा० टी०) हाथ दानसे, मस्तक बडेलोगोंके पैर पकडनेसे, मुख सत्यबोलनेसे, दोनों भुजा अतुल पराक्रमसे हृदय स्वच्छ वृत्तिसे, कान शास्त्रश्रवणसे; बडाईके योग्य होते हैं और यही सत्पुरुषोंके बिना ऐश्वर्यकेभी भूषण है ॥ ६५ ॥

संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोम-
लम् ॥ आपत्सु च महाशैलशिलासं-
घातकर्कशम् ॥ ६६ ॥

(भा० टी०) संपत्तिमें महात्मा लोगोंका चित्त कम-
लसेभी कोमल रहता है और आपत्तिमें पर्वतकी बडी
शिलाकी तुल्य कठिन होजाता है ॥ ६६ ॥

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि
न ज्ञायते मुक्ताकारतया तदेव नलिनी
पत्रस्थितं राजते ॥ स्वात्यां सागरशु-
क्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्ग
तो देहिनाम् ॥ ६७ ॥

(भा० टी०) तप्तलोहेपर जलकी बूँद पडनेसे उसका
नामभी नहीं रहता वही बूंद कमलके पत्रपर पडनेसे
मोतीके सदृश शोभित होता है फिर वही बूंद स्वाति
नक्षत्रमें समुद्रकी सीपमें पडनेसे साक्षात् मोती हो जाता
है इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रायः अधम मध्यम और
उत्तम गुण संसर्ग (संग) हीसे होता है ॥ ६७ ॥

य: प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् ॥
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यदेतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥ ६८ ॥

(भा० टी०) जो अपने चरित्रोंसे अपने पिताको प्रसन्न रक्खे ऐसा पुत्र, जो अपने पतिका निरंतर हित चाहै ऐसी स्त्री, और जो आपत्ति और सुख दोनोंमें समान भाव रक्खे ऐसा मित्र, जगतमें यह तीनों पुण्यवानही को मिलते हैं ॥ ६८ ॥

एको देवः केशवो वा शिवो वा ॥ एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा ॥ एको वासः पत्तने वा वने वा ॥ एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥ ६९ ॥

(भा० टी०) एक देवको ग्रहण किया चाहिये केशव हो वा शिव, एक मित्र किया चाहिये राजा हो वा तपस्वी, एक जगह बसा चाहिये नगर हो वा वन, और एक सुन्दरी स्त्रीसे प्रीति हो वा कन्दरा (गुहा) से ॥ ६९ ॥

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्

गुणान् ख्यापयन्तः स्वार्थान् सम्पादयन्तो विततप्रियतरारम्भयत्नाः परार्थे ॥ क्षान्त्यैवाक्षेप रूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः ॥ ७० ॥

(भा० टी०) नम्रतासे ऊंचे होते हैं और परगुण कथन करनेसे अपना गुण प्रसिद्ध करते हैं और निरंतर विस्तारपूर्वक परकार्य करनेसे अपना कार्य संपादन करते हैं और निन्दक दुष्टोंको अपनी क्षमाहीसे दूषित करदेते हैं ऐसे आश्चर्य आचारणवाले बहुमाननीय संत लोग जगत्में किसके पूजनीय नहीं है ॥ ७० ॥

इति सुजनप्रशंसा ॥

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्भूरि विलम्बिनो घनाः ॥ अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ७१ ॥

(भा० टी०) जैसे फल होनेसे वृक्ष नम्र होते हैं,

जैसे नवीन२ जल भरनेसे मेघ भूमिपर झुक जाते हैं वैसेही सत्पुरुषभी संपत्ति पायके उद्धत नहीं होते किंतु नमते हैं अर्थात् परोपकारी जीवोंका यही स्वभावही है ॥ ७१ ॥

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ॥ विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्नतु चंद-नेन ॥ ७२ ॥

(भा० टी०) कानकी शोभा शास्त्रश्रवणसे है कुंडल पहिरनेसे नहीं, हाथकी शोभा दान करनेसे है कंकण पहिरनेसे नहीं, करुणामय जनोंके देहकी शोभा परो-पकार करनेसे है कुछ चंदन लगानेसे नहीं ॥ ७२ ॥

पापान्निवारयति योजयते हिताय गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति॥ आप-द्गतं च न जहाति ददाति काले सन्मि-त्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ७३ ।

(भा० टी) मित्रको पाप करनेसे वर्जित करै और उसके हितकी बात उसे उपदेश करै, उसकी गुप्त बातको छिपावै, गुणोंको प्रगट करै, आपत्तिकालमें साथ न छोडै और समय पडेपर यथा शक्ति द्रव्यभी दे यह

अच्छे मित्रोंका लक्षण संतोंनें कहा है ॥ ७३ ॥

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति चन्द्रो विकाशयति कैरवचक्रवालम् ॥ नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति सन्तः स्वयं परहिते सुकृताभियोगाः ७४

(भा० टी०) सूर्य विना यांचे स्वतः कमलके समूह को विकसित करता है. चंद्रमा विनायाचे कुमुदके समूहको प्रफुल्लित करताहै और मेघ विना याचना किये सृष्टिमें जल देता है ऐसेही संत जन विना याचेही पराये हितके हेतु आपसे आप उद्योग करते हैं ॥ ७४ ॥

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये। सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये ॥ तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये ॥ ये निघ्नंति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥ ७५ ॥

(भा० टी०) सत्पुरुष वे हैं जो अपना अर्थ छोड दूसरेके कार्यको साधते हैं, सामान्य पुरुष वे हैं जो अपने

और पराये दोनों कार्यको साधन करते हैं, और मनुष्यों में राक्षस वे पुरुष हैं जो अपने हितके अर्थ पराये कामको नष्ट करते हैं, और जो व्यर्थ दूसरे के कार्यकी हानि करते हैं वे कैसे पुरुष हैं उन्हे हम नहीं जानते । ७५ ।

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः । क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ॥ गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदं युक्तं तेन जलेनशाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥ ७६ ॥

(भा० टी०) दूधमें जब जल मिला तो उस दूधने अपना सब गुण और रूप अपने जलरूपी मित्रको दे दिया फिर दूधमें ताप देखकर जलने अपना शरीर अग्नि में होमदिया अर्थात् जलगया फिर दूधनेभी मित्रकी इस आपत्तिको देखकर अग्निमें गिरना चाहा फिर जलके छींटे पाके अपने मित्रको आया जान ठंडा हो बैठगया सो उचितहीहै क्योंकि सत्पुरुषों की मैत्री ऐसीही होती है।

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीय-द्विषामितश्च शरणार्थिनः शिखरिणां

गणाः शेरते ॥ इतोऽपि वडवानलःसह समस्तसंवर्तकैरहो विततमूर्जितं भर-सहं च सिन्धोर्वपुः ॥ ७७ ॥

(भा० टी०) समुद्रमें एक ओर शेषाशायी विष्णुभगवान सोते हैं एकओर विष्णुके शत्रु राक्षसनका कुल रहता है. एक ओर शरणार्थी पर्वतों के समूह पडे हैं और एकओर वडवानल प्रलयकी अग्नि सहित जलको औंटाय रहा है परन्तु इन सबोंसे वह कुछ नहीं घबराता है इससे यह जानपडा कि समुद्रका शरीर बडा विशाल बलवान् और भार सहनेवाला है सारांश यह कि सत्पुरुषभी समुद्र-वत् होते हैं ॥ ७७॥

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापेरतिं मा कृथाः । सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपद्वीं सेवस्व विद्वज्जनम् ॥ मान्यान्मानय॥विद्विषोप्यनुनयप्रख्या पयस्वान्गुणान्कीर्तिं पालयदुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥ ७८ ॥

(भा० टी०) तृष्णाका छेदन, क्षमाका सेवन, मद का त्याग, पापसंग प्रीति मतकरो, सत्य बोलो, साधुजनों

की मर्यादा (मार्ग) को प्राप्त हो, विद्वज्जनों का सेवन करो, मान्यजनों को मानों, शत्रुओंको भी प्रसन्न रक्खो, अपने गुणोंको प्रसिद्ध करो, अपनी कीर्तिका पालन करो और दुःखिओं पर दया रक्खो यही सत्पुरुषों के लक्षण हैं ॥ ७८ ॥

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः॥
परगुण परमाणून्पर्वती कृत्यनित्यम्
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥ ७९ ॥

(भा० टी०) मन वाणी और शरीरमें पुण्यरूपी अमृत से भरेहुये त्रिभुवनको उपकारोंसे तृप्त करनेवाले और परमाणु सरीसे अल्प पराये गुणों को पर्वतसा बढाके अपने हृदयमें प्रसन्न होनेवाले कोई बिरलेही सन्तहैं ॥७९॥

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ॥
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कङ्को-
लनिम्बकुटजा अपि चन्दनाःस्युः। ८०।

(भा० टी०) उस सोने के सुमेरु पर्वतसे हमको क्या

और चांदी के कैलाशसे भी क्या कि जिसके आश्रित वृक्ष सदा जैसे के तैसेही बने रहें, हमतो मलयाचलको श्रेष्ठ मानते हैं कि जहां कङ्कोल नीम और कुटजादि कडुवे वृक्ष भी सब चन्दन होजाते हैं ॥ ८० ॥

अथ धैर्यप्रशंसा ॥

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् सुधां विनानप्रययुर्विरामंनानिश्चितार्थाद्विरमन्तिधीराः ८१

(भा० टी०) अनमोल रत्न पाकर देवताओंने संतुष्ट हो समुद्र का मथना न छोड़ा और भयानक विषसे भी भयभीत होकर अपने उद्योगसे न चूके, विना अमृत निकाले विश्राम न लिया इससे यह सिद्ध हुआ कि धीर लोग अपने निश्चित अर्थको बिना सिद्ध किये बीचहीमें छोडके नहीं बैठ रहते ॥ ८१ ॥

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्क शयनं । क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ॥ क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो । मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ८२

(भा० टी०) कभी खाली भूमिपर सो रहते, कभी अच्छे पलंग पर शयन करते, कभी साग पात खाके रहजाते, कभी अच्छे चावलादि पदार्थोंको भोजन करते, कभी गुदड़ी ओढके दिन बिताते, और कभी दिव्यवस्त्र धारण करते हैं, मनस्वी और कार्यार्थी पुरुष सुखदुःख दोनों को नहीं गिनते ॥ ८२ ॥

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो।ज्ञानस्योपशमःश्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ॥ अक्रोध स्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥ ८३ ॥

(भा० टी०) ऐश्वर्यका भूषण सज्जनता, शूरताका वाक्संयम अर्थात् अभिमानके बचन न कहना, ज्ञान का शान्ति, शास्त्रपढने का विनय, धनका पात्रको देना, तपस्या का क्रोध न करना, प्रभुता का क्षमा, धर्मका निश्छलता, अन्य सब गुणोंका भूषण और कारण शील है ॥ ८३ ॥

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदिवा स्तुवन्तु

लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥ अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा । न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ८४ ॥

(भा० टी०) नीति जाननेवाले चाहैं निंदा करैं चाहै स्तुति. और लक्ष्मी चाहै घरमें बहुतसी आवे चाहै चली जाय, प्राण चाहै अभी जाय चाहै कल्पांतमें, परंतु धीर लोग न्यायका मार्ग छोडकर एक पगभी उससे बाहर नहीं चलते ॥ ८४ ॥

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा । कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः। तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा लोकाः पश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥ ८५ ॥

(भा० टी०) ऐसा सर्प जिसे जीवनकी आशा नहीं पिटारे में बंदरहने से उसका शरीर पीडित है और क्षुधा से उसकी सब इंद्रियां शिथलहो रहीहैं मूषक (चूहा) रातको

उस पिटारे में छेद करके आपसे उस सर्पके मुख में गिरा वह उस मूसे के मांस से तृप्त होकर उसी छेदके रस्तेसे निकल गया सो हे लोगो देखो कि ऐसेही मनुष्यों के क्षय और वृद्धिमें दैवही कारण है ॥ ८५ ॥

पातितोऽपिकराघातैरुत्पतत्येवकन्दुकः। प्रायेण साधु वृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥ ८६ ॥

(भा० टी०) हाथों की ताडनासे गिरायाभी गेंद ऊपरकोही उछलता है इस से यह प्रगट हुआ कि साधु आचरणवालों की विपत्ति प्राय: स्थिर नहीं होती ॥ ८६ ॥

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः॥ नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति ॥ ८७ ॥

(भा० टी०) आलस्य मनुष्यों के शरीर में महाशत्रु है, उद्योग समान दूसरा बंधु नहीं कि जिसके करनेसे दु:ख नहीं आता ॥ ८७ ॥

छिन्नोऽपिरोहति तरुःक्षीणोप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ॥ इति विमृशंतः सन्तः संतप्यन्ते न विप्लुता लोके ॥ ८८ ॥

(भा० टी०) छांटाहुआ वृक्ष फिर बढकर फैल जाता है, चंद्रमा क्षीण होकर फिर बढकर पूर्ण होजाता है, इस से बिचार करने वाले संत विपत्ति से संतापको प्राप्त नहीं होत ॥ ८८ ॥

इति धैर्यप्रशंसा। अथ दैवप्रशंसा।

नेतायस्य बृहस्पतिःप्रहरणं वज्रंसुराः सैनिकाः स्वर्गो दुर्गमनिग्रहःकिल हरे-रैरावतो वारणः।इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलिभिर्भग्नः परैःसंगरे तद्व्यक्तं वरमेव दैवशरणं धिग्धिग्वृथापौरुषम् ॥ ८९ ॥

(भा० टी०) बृहस्पति ऐसे मंत्री, वज्र ऐसा शस्त्र, देवताओंकी सेना ऐसी सेना, स्वर्ग ऐसा गढ, ऐरावतसा चढने को हाथी और तिसपर विष्णु का पूर्ण अनुग्रह तोभी ऐसे आश्चर्य की सामग्री वाला इंद्र शत्रुओंसे संग्राम में हारताही रहा; इससे यह सिद्ध हुवाकि दैवही मुख्यकर शरण के योग्य है पुरुषार्थ वृथा है और उसको धिक्कार है ॥ ८९ ॥

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिःकर्मानुसारि-णी ॥ तथापि सुधिया भाव्यं सुविचा-

यैव कुर्वता ॥ ९० ॥

(भा०टी०) यद्यपि मनुष्योंको फल कर्म्मके अनुसारही मिलते हैं और बुद्धिभी कर्म्मके अनुसार होजाती है तोभी बुद्धिमानोंको विचारहीके काम करना चाहिये ॥ ९० ॥

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके । वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः॥तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः प्रायो गच्छति यत्र भाग्य रहितस्तत्रैव यांत्यापदः ॥ ९१ ॥

(भा० टी०) खल्वाट अर्थात् गंजा पुरुषका सिर सूर्य्यकी किरणोंसे जलने लगा तब वह छायाकी इच्छा करताहुआ दैवसंयोगसे तालके वृक्षके नीचे जा खडा हुआ तहांजातेही शीघ्र बडा फल ऊपरसे सिरपर गिरा उसका सिर फूटा तिसका बडा शब्द हुआ इससे यह सिद्ध हुआ कि भाग्यहीन पुरुष जहां जाता है वहां विपत्तिभी उसके साथही साथ जाती है ॥ ९१ ॥

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम्॥मतिमतां च विलो-

क्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥ ९२ ॥

(भा० टी०) हाथी और सर्प इन दोनोंको बन्धनमें देखतेहैं चंद्रमा और सूर्य्यकोभी राहुग्रहसे पीडित देखते हैं, और पंडितोंको दरिद्री देखते हैं इससे हमारे समझ में विधाताही बलवान् दीख पड़ताहै ॥ ९२ ॥

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ॥ तदपितत्क्षणभाङ्गि करोतिचेदहह कष्टमपण्डितताविधे ॥ ॥ ९३ ॥

(भा० टी०) प्रथम विधाता पुरुष रत्नको सब गुणों की खानि और पृथ्वीका भूषण रचता है परंतु उसका शरीर क्षणभंगुर करते हैं यह बडे दुःख की बात है और इसमें विधाताकी मूर्खता जान पड़ती है ॥ ९३ ॥

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्यकिं नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्य्यस्य किं दूषणम् ॥ धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्यकिं

दूषणं यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥ ९४ ॥

(भा० टी०) करीरकेवृक्षमें पत्ते नहीं लगते तो इसमें वसंतऋतुका क्या दोष है, घूघू पक्षी दिनमें नहीं देखता तो सूर्य्य का इसमें क्या दोष है और जलकी धारा जो चातक पक्षीके मुखमें नहीं पड़ती तो इसमें मेघका क्या दोषहै,इससे यह जानपड़ताहै कि विधाताने जो प्रथम ललाटमें लिखदिया है उसके मिटाने की किसीको सामर्थ्य नहीं है ॥ ९४ ॥

अथ कर्म प्रशंसा ॥

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ॥ फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किंच विधिना नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ९५

(भा० टी०) देवताओं को हम नमस्कार करते हैं परन्तु उनको विधाता के वशमें देखते हैं इसलिये विधाता को नमस्कार करते हैं पर विधाता भी हमारे पूर्व निश्चित कर्म के अनुसार फल देता है फिर जब फल और विधाता दोनों कर्म के आधीन हैं तो देवता और विधातासे क्या काम है इस कारण से कर्मही को नमस्कार है क्योंकि

विधाताका भी सामर्थ्य जिसपर नहीं चलता ॥ ९५ ॥

ब्रह्मायेन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ॥ रुद्रो येन कपाल पाणि पुटके भिक्षाटनं कारितः सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥ ९६ ॥

(भा० टी०) जिस कर्म ने ब्रह्माको कुम्हार के समान निरंतर ब्रह्मांडरचना के हेतु बनाया, और विष्णु को वारंवार दश अवतार ग्रहण करने के संकटमें डाला और रुद्रको कपाल हाथमें लेकर भिक्षा मांगने के कष्ट में रक्खा और सूर्य को आकाशमें नित भ्रमणचक्रमें डाला उस कर्मको प्रणाम है ॥ ९६ ॥

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा ॥ भाग्यानि पूर्वतपसा खलुसञ्चितानि काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥ ९७ ॥

(भा० टी०) पुरुषकी सुन्दर आकृति कुछ फल नहीं देती और न उत्तम कुल, शील, विद्या, और बड़े यत्नसे कीहुई सेवा भी फल नहीं देती एक पूर्वतपस्या के संचित किये हुये भाग्यही मनुष्यों को समय समय पर वृक्षके तुल्य फल देते हैं ॥ ९७ ॥

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा ॥ सुप्तं प्रमत्तंविषम स्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ ९८ ॥

(भा० टी०) वन, रण, शत्रु, जल, और अग्निमें समुद्र में पर्वत के संकटमें सोते हुए असावधान और विषम अवस्थामें पुरुषके पूर्व जन्म के पुण्यही रक्षा करतेहैं ।९८।

या साधूंश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात्॥ तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितम् हेसाधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः ॥ ९९ ॥

(भा० टी०) जो सत्क्रिया खलों को साधुता देतीहै, और मूर्खों को पंडितता, शत्रुओं को मित्रता गुप्तविषयों को प्रगट और विषको अमृत करदेती है उस सत्क्रिया रूपी भगवतीकी आराधना करो हे साधो ! यदि वांछित फल भोगा चाहो तो कष्ट और हठसे बहुतसे गुणों के साधनमें वृथा श्रम न करो ॥ ९९ ॥

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ परिणतिरवधार्या यत्नतःपण्डितेन ॥ अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः १००।

(भा० टी०) कोई कार्य योग्य हो अथवा अयोग्य हो परन्तु करनेवाले पंडित को उसका परिणाम पहिले से विचार लेना चाहिये बिना बिचारे अति शीघ्रता से काम कियेका फल मरणपर्यन्त हृदयको कंटकके समान दाहता है ॥ १०० ॥

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति च लशुनं चंदनैरिंधनौघैः सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः ॥ छित्त्वा कर्पूरखंडान्वृतिमिह कुरुते

कोद्रवाणां समंतात्प्राप्येमां कर्मभूमिं नचरति मनुजोयस्तपो मंदभाग्यः ॥

(भा० टी०) वह पुरुष मानो मरकतमणि के बरतन में लहशुनको चंदनके ईंधन से पकाता है और खेतमें सोने का हल चलाकर आक वृक्षकी जडको जलाने के हेतु निकालता है और कपूर के टुकडे ढोके काटकर, कोदोंके चारों ओर दंडवार बनाता है जो मंदभागी मनुष्य इस कर्म भूमिमें आकर तप नहीं करता ॥ १०१ ॥

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जय त्वाहवे वाणिज्यं कृपिसेवनादिसकला विद्याः कलाः शिक्षतु ॥ आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं नाभाव्यं भवतीहकर्मवशतो भाव्यस्य नाशःकुतः ॥ १०२ ॥

(भा० टी०) चाहे समुद्रमें डूबो चाहे सुमेरु के सिर पर चढ जावो चाहे घोर संग्राम में शत्रुओं को जीतो चाहे और वनिज खेती से वा आदि विद्याकी नाना कला करो और आकाशमें पक्षी के समान बड़े यत्नसें उड़े फिरो पर अनहोनी नहीं होती और जो कर्म वश

होनी है सो नहीं टलती ॥ १०२ ॥

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य॥ कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा यस्या- स्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ॥ १०३ ॥

(भा० टी०) भयानक बन उस पुरुष के लिये अच्छा नगर होजाता है और सब जन उसके मित्र होजाते हैं और सम्पूर्ण पृथ्वी उसके निकट रत्नों से परिपूर्ण होजाती है जिस पुरुषका पूर्व जन्म का बहुत सा संचय किया भया पुण्य है ॥ १०३ ॥

अथ प्रश्नोत्तरे श्लोकाः ।

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञे- तरैः सङ्गतिः का हानिः समयच्युति- र्निपुणता का धर्मतत्वे रतिः॥ कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा कानुव्रता किं धनं विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलं ॥ १०४ ॥

(भा० टी०) लाभ क्या है गुणियों की संगति,

दुःख क्या मूर्खोंका संग, हानि क्या समय पर चूकना, निपुणता क्या धर्म में रति होना, शूर कौन है जिसने इंद्रियों को वश में किया, स्त्री कौन अच्छी है जो अनुकूल हो, धन क्या है विद्या, सुख क्या है परवश न होना, राज्य क्याहै अपनी आज्ञा का चलना ॥ १०४ ॥

मालतीकुसुमस्येव द्वेगतीह मनस्विनः। मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥ १०५ ॥

(भा० टी०) मालती के फूलोंके समान मनस्वी (धीर) पुरुषकी दो वृत्ति होती हैं या तो सबलोगों के मस्तक पर रहे अथवा बनमेंही नष्ट होजांय ॥१०५॥

अप्रिय बचनदरिद्रैः प्रिय वचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ॥ परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मंडिता वसुधा ॥ १०६ ॥

(भा० टी) अप्रियबचनके तो दरिद्र प्रिय बचनों से संपन्न अपनीही स्त्रीसे संतुष्ट और पराई निंदासे रहित जो पुरुष हैं उनसे कहीं कहीं ही पृथ्वी शोभायमान है अर्थात् ऐसे पुरुष सब ठौर नहीं होते ॥ १०६ ॥

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्न शक्यते

धैर्यगुणः प्रमाष्टुम् ॥ अधोमुखस्यापि कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥ १०७ ॥

(भा० टी०) क्लेशित जन यदि धैर्यवृत्तिवाला होय तो उसकी धैर्यवृत्तिको नहीं मिटा सक्ता जैसे प्रज्वलित अग्निको उलट दे तोभी ज्वाला ऊपरही को रहती है नीचे नहीं जाती ॥ १०७ ॥

कान्ताकटाक्षविशिखा न दहन्ति यस्य चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ॥ कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशैर्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥ १०८ ॥

(भा० टी०) स्त्रियों के कटाक्ष रूपी बाण जिसके चित्तको नहीं वेधते और क्रोधरूपी अग्निकी आँच जिसके चित्तको नहीं जलाती और इंद्रियों के विषय लोभ फांसी में डालकर जिसके चित्तको नहीं खींचते वही धीर पुरुप तीनों लोक को जीतता है ॥ १०८ ॥

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीत-

लम् ॥ क्रियते भास्करेणेव परिस्फुरित तेजसा ॥ १०९ ॥

(भा० टी०) एकही अकेला शूर सारी पृथ्वी को पांव तले दबाकर वश कर लेता है जैसे अकेला तेजस्वी सूर्य्य सारे जगतकोप्रकाशित करता है ॥१०९॥

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणान्मेरुः स्वल्प शिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते ॥ व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायतेयस्याङ्गेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ॥ ११० ॥

(भा० टी०) अग्नि उस पुरुष को जलके समान जान पड़ती है, और समुद्र स्वल्प नदीसा उसको तत्काल दीख पड़ताहै, मेरुपर्वत स्वल्प शिलाके तुल्य बूझ पड़ता है, सिंह शीघ्रही उसके आगे हिरन बन जाता है, सर्प उसके लिये फूलकी माला सा बन जाता है और विषरस उस पुरुष को अमृतकी वृष्टि के समान होजाता है जिस पुरुष के अंगमें समस्त जगत्का मोहने वाला शील प्रकाशमान है ॥ ११० ॥

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् ॥
तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनोन पुनःप्रतिज्ञाम् ॥
॥ १११ ॥

(भा० टी०) लज्जादि गुणोंके समूहको उत्पन्न करने वाली और अपनी माता के समान शुद्ध हृदय और स्वाधीन रहने वाली प्रतिज्ञाको तेजस्वी और सत्य व्रत के धारण करने वाले पुरुष नहीं छोड़ते परन्तु अपना प्राणभी सुखसे त्याग करदेते हैं ॥ १११ ॥

इति भर्तृहरिकृतनीतिशतककी भाषाटीका संपूर्णा ॥
श्रीभर्तृहरिकृतं नीतिशतकं समाप्तम् ॥
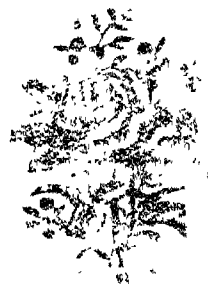
॥ श्री ॥

❁भर्तृहरिशतक❁

अथ शृंगारशतक प्रारम्भः

भापा टीका सहित ।

बाबू दीपचन्द मैनेजर

के प्रबन्ध से

"मुलतानमल प्रिन्टिग प्रेस"

में छपा ।

छा० नीमच

विक्रम संवत् १९५७

अथ भर्तृहरिविरचितम् ।

(शृंगारशतकं प्रारभ्यते)
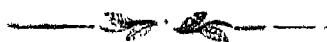
शम्भुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां ये-
नाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः॥ वाचा
मगोचरचरित्रविचित्रिताय तस्मै नमो
भगवते कुसुमायुधाय ॥ १ ॥

(भा० टी०) जिसने शिव ब्रह्मा और विष्णुको भी स्त्रियोंके गृहकार्य करनेके लिये दास बना रक्खा है और विचित्र में चतुर जिसका वर्णन नहीं होसक्ता ऐसे पुष्पायुध कामदेव को नमस्कार है ॥ १ ॥

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया
पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ॥ वचो-
भिरीर्ष्याकलहेन लीलया समस्तभावैः
खलु बन्धनं स्त्रियः ॥ २ ॥

(भा० टी०) मंद मुसकाना, लज्जित होना, मुख फेर लेना, अर्धकटाक्षसे देखना, मधुरबचनसे बोलना,

इर्ष्यासे कलह करना और अनेक चरित्र दिखाना इन सब प्रकारों से स्त्री बंधन रूपही है ॥ २ ॥

भ्रूचातुर्याकुंचिताक्षाःकटाक्षाः स्निग्धा वाचो लज्जिताश्चैव हासाः ॥ लीला मन्दं प्रस्थितं च स्थितं च स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥ ३ ॥

(भा० टी०) भौंह फेरनेकी चतुराई, अर्द्धनेत्रसे कटाक्षचलाना मीठी बातें बोलना, लज्जित हो हंसना, लीलासे मंद मंद चलना और घूम के खड़े होजाना स्त्रियोंके यह सहज गुण और शस्त्र अर्थात् इन्हीं भावों से पुरुषों को मारती हैं ॥ ३ ॥

क्वचित्सुभ्रूभंगैः क्वचिदपि च लज्जापरिणतैः क्वचिद्भीतित्रस्तैः क्वचिदपि च लीलाविलसितैः ॥ नवोढानामेभिर्वदनकमलैर्नेत्रचलितैःस्फुरन्नीलाब्जानां प्रकरपरिपूर्णा इव दृशः ॥ ४ ॥

(भा० टी०) किसी समय सुंदर भौंहसे कटाक्ष करता, कभी लज्जासे शोभायमान दिखाई पड़ता कभी भयसे भीत होता और कभी लीलाहासे विलासों को

धारण करता है इसभांति नेत्रोंसे शोभित नवीन स्त्रियों का जो मुखकमल है उससे दृष्टि ऐसी व्याप्त हो रही है जैसे नीलकमलके समूहसे ॥ ४ ॥

वक्त्रं चन्द्रविकासि पङ्कजपरीहासक्षमे लोचने वर्णाःस्वर्णमपाकरिष्णुरलिनी-जिष्णुःकचानाञ्चयः ॥ वक्षोजाविभकुम्भसंभ्रमहरौ गुर्वी नितंबस्थली वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मंडनं ॥ ५ ॥

(भा० टी०) चंद्रमाको फीका करणेवाला मुख, कमलके हंसने वाला नेत्र, सुवर्णकी दमकको मंद करनेवाली देहकी कांति, भौंरोंके पुंजको जीतनेवाले केश, गजमस्तककी शोभा हरनेवाले स्तन और विशाल भारी दोनों नितंब और मन कोमलबाणी हरने वाली ये सब स्त्रियोंमें स्वाभाविक भूषण हैं ॥ ५ ॥

स्मितं किञ्चिद्वक्त्रे सरलतरलो दृष्टि-विभवः परिष्यंदो वाचामभिनवविलासोक्तिसरसः ॥ गतीनामारम्भः किस

लयितलीलापरिकरः स्पृशंत्यास्तारु-
ण्यं किमिह न हि रम्यं मृगदृशः॥६॥

(भा० टी०) मंद मुसुकुराताहुआ मुख, सीधे और चंचल दृष्टि पात करना, नये नये विलास उक्तिसे सरस बात करना, लीलासे कमल के समान मंद मंद गति से गमन का आरंभ करना. युवा अवस्था चढतेही क्या क्या सुंदर हाव भाव स्त्रियोंमें नहीं उत्पन्न होते ॥ ६ ॥

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेमप्रसन्नं मुखं घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्राव्येषु किंतद्वचः ॥ किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तत्तनुर्ध्येयं किं नवयौवनं सुहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ॥ ७ ॥

(भा० टी०)रसिकोंके देखने योग्य वस्तुओंमें उत्तम बस्तु क्या है मृगनयनी नायकों का प्रेमसे प्रसन्न वदन, सूंघनेकी बस्तुमें उनके मुखकी भाफ, सुननेमें मधुर-बाणी, स्वादिक वस्तुमें उनके अधरपल्लवका रस, स्पर्शकी वस्तुमें उनका शरीर, और ध्यान करनेके योग्य उनका यौवन और विलास है ॥ ७ ॥

एताः स्खलद्वलयसंहतिमेखलोत्थ-
झङ्कार नूपुर रवाहृत राजहंस्यः ॥
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः ॥८॥

(भा० टी०) ऐसी स्त्रियां जिनके चंचल कंकणोंके शब्द क्षुद्र घंटिका (कौंदनी) की ध्वनि और नूपुर के झनकारने राजहंसिनियोंकी चाल जीत लिया है वे तरुणी भड़की हरिणीके समान नेत्रपात कर किसके मनको विवश नहीं करतीं ॥ ८ ॥

कुंकुमपङ्ककलङ्कितदेहा गौरपयोधर
कम्पितहारा ॥ नूपुरहंसरणत्पदपद्मा
कं न वशीकुरुते भुवि रामा ॥ ६ ॥

(भा० टी०) केशर और चन्दन से जिसकी देह शोभित होरही है गोरे गोरे स्तनोंपर हार झूमता है और चरणकमल में हंससे नूपुर बोलते हैं ऐसी सुन्दर स्त्रियां इस पृथ्वी पर किस पुरुषका मन नहीं मोह लेतीं ॥९॥

नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा ।
येनित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम् ॥

याभिर्विलोल तरतारक दृष्टिपातैः शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः ॥ १० ॥

(भा० टी०) वे श्रेष्ठ कवि निश्चित उलटी समुझ-वाले हैं जिन्होंने स्त्रियोंका नाम अबला रक्खा है। जिनकी चंचल पुतलियोंके कटाक्षसे इन्द्रादिकभी हार मानतेहैं भला कहो तो वे अबला कैसे हैं ॥ १० ॥

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकर-ध्वजः ॥ यतस्तन्नेत्रसंचारसूचितेषु प्रवर्तते ॥ ११ ॥

(भा० टी०) कामदेव निश्चय करके स्त्रियोंका आज्ञाकारी सेवक है क्यों कि; जिसे वह आखोंसे सैन कर देती हैं उसी पुरुषको वह दबालेती हैं ॥ ११ ॥

केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने । अन्तर्वक्त्रमपि स्वभावशुचि-भिःकीर्णं द्विजानां गणैः ॥ मुक्तानां सतताधिवासरुचिरं वक्षोजकुम्भद्वय-मित्थं तन्वि वपुःप्रशांतमपितेक्षोभं

करोत्येवनः ॥ १२ ॥

(भा० टी०) केश संयमी हैं अर्थात् सुगंधित तैल युत कंघीसे संवारे. नेत्र दोनों श्रुतिके पार होगये हैं अर्थात् कानोंतक अत्यन्त विशाल हैं. मुख अन्तरसे सहजही शुचि अर्थात् विमल है और द्विजोंके समूहसे भरे अर्थात् दांतोंकी पङ्क्तिके किरणोंसे चमकते. और दोनों स्तनकलश से मुक्ताका वास निरंतर अर्थात् मोतियोंकी मालासे शोभित हैं: सूक्ष्म अंगवाली स्त्री तथा शरीर शांतस्वरूपभी है अर्थात् संयमी नियमी श्रुति वेद का पारगामी शुचि पवित्र द्विज ब्राह्मण और मुक्त विरक्त पुरुष इनसे युक्त है, पर मुझे तो अनुरागही उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते ॥ यथा हरसिचेतांसि गुणैरेव नसायकैः ॥ १३ ॥

(भा०टी०) हे सुन्दरी तेरी यह धनुष विद्यामें कुशलता विचित्र देख पड़ती है जो सबके चित्तको गुण अर्थात् प्रत्यंचा वा चतुराई ही से वींधती है बाण से नहीं ॥ १३ ॥

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दु- षु ॥ विना मे मृगशावाक्ष्या तमो

भूतमिदं जगत् ॥ १४ ॥

(भा० टी०) दीपक, अग्नि, तारे, सूर्य, और चन्द्रमा, ये सब हैं परन्तु एक मृगनयनी मेरी स्त्री बिना मुझे सब जग अंधेरा है ॥ १४ ॥

यद्वृत्तःस्तनभार एष तरले नेत्रे चले भ्रूलते । रागान्धेषु तदोष्ठपल्लवमिदं कुर्वन्तु नाम व्यथाम् ॥ सौभाग्याक्षर पङ्क्तिरेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयं मध्यस्थापि करोति तापमधिकं रोमावली केन सा ॥ १५ ॥

(भा० टी०) उन्नत स्तनके भार चंचल नेत्र और भ्रूलता और राग भरे नवीन पत्तोंसे दोनों अधर पल्लव ये रागसे अंधे रसिकोंके शरीरमें पीड़ा करें तो करें क्यों कि कामदेवके हाथकी लिखी तेरे मस्तकमें सौभाग्य के अक्षरोंकी पंक्ति है परंतु मध्यस्थ रोमावली क्यों अधिक ताप देती है तात्पर्य यह है कि उन्नत चंचल रागवान् प्रायः पीडा देताही है परन्तु मध्यस्थ जिसका काम छुडादेने का है वह रोमावली क्यों अधिक पीड़ा देती है अर्थात् विपरीत करती है ॥ १५ ॥

गुरुणा स्तनभारेण मुखचंद्रेण भास्वता ॥ शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा ॥ १६ ॥

(भा० टी०) स्तनोंके भारसे गुरु प्रकाशमान मुखसे चंद्र और दोनों चरणसे मंदगामी ग्रहमयसी वह स्त्री शोभा देती है अर्थात् गुरु बृहस्पति मंदगामी शनि चंद्र प्रसिद्ध ही हैं इन ग्रहोंका नामभी प्रकाशित है ॥ १६ ॥

तस्याः स्तनौ यदि घनौ जघनं विहारि वक्रं च चारु तव चित्त किमाकुलत्वम् ॥ पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः ॥ १७ ॥

(भा० टी०) जिस स्त्रीके स्तन पुष्ट और जंघन विहार करनेयोग्य हैं और मुख सुन्दर है तो उन्हे देख कर हे चित्त क्यों व्याकुल होता है यदि उनमें तेरी वांछा होय तो पुण्य कर क्यों कि पुण्य बिना मनोरथ सिद्ध नहीं होते ॥ १७ ॥

मात्सर्यमुत्सार्य विचार्यकार्यमार्याः

समर्यादामिदं वदन्तु ॥ सेव्या नितम्बाः किल भूधराणामुत स्मरस्मेर विलासिनीनाम् ॥ १८ ॥

(भा० टी०) हे पंडितो मत्सरता त्यागि और मर्यादा सहित विचार कर कहो के तो पर्वतही के नितंब सेवने योग्य है के कामदेवकी उमंगसे मुसुकराती विलासिनी स्त्रियोंके नितंबही सेवने योग्य हैं नितंब पर्वतके मध्यभाग और स्त्रियोंके कटीके पश्चात् भागको कहते हैं ॥१८॥

संसारेऽस्मिन्नसारे परिणतितरले द्वे गती पण्डितानां तत्त्वज्ञानामृताम्भःप्लुतललित धियां यातु कालः कदाचित् ॥ नो चेन्मुग्धाङ्गनानां स्तनजघनभराभोगसंभोगिनीनां स्थूलोपस्थस्थलीषु स्थगितकरतलस्पर्शलोलोद्यतानाम् ॥ १९ ॥

(भा० टी०) यह असार संसार जिसकी अंत अवस्था अतिचंचल है उसमें पंडितोंके हेतु दोही सुलभगति हैं कैतो तत्त्वज्ञानरूपी अमृतरसमें स्नान करनेवाली जिनकी

निर्मल बुद्धि है उनका काल अच्छा व्यतीत होता है अथवा सुंदर कामिनी पुष्टस्तन और जघनसे भोगमें सुख-दाई जो स्त्री उनके शरीरपर हाथदिये चंचलतासे उद्योग में जो तत्पर हैं उनका काल भलीभांति व्यतीत होताहै १९

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैःशिरो-रुहैः ॥ पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव स्त्री ॥ २० ॥

(भा० टी०) चंद्रकांत मुख महानील केश और दोनों पद्मराग हाथोंसे ऐसी रत्नमय वह स्त्री शोभा देती है अर्थात् चंद्रकांत महानील पद्मराग तीन प्रकारकी मणि रूप स्त्री शोभित होती है ॥ २० ॥

संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ॥ एताःप्रविश्य सदयं हृदयं नराणां किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥२१॥

(भा० टी०) मोहलेती, मत्तकर देती, विटंबना कराती डांट झिडकन देती रमण कराती और विरह का विषाद देती है ये स्त्रियां मनुष्यके सदय हृदय में प्रवेश करके क्या नहीं करती हैं ॥ २१ ॥

विश्रम्य विश्रम्य वनद्रुमाणां छायासु-
तन्वी विचचारकाचित् ॥ स्तनोत्तरी
येण करोद्धृतेन निवारयन्ती शशिनो
मयूखान् ॥ २२ ॥

(भा० टी०) वनके वृक्षोंकी छायामें विश्राम लेती कोई एक स्त्री हाथसे अपने स्तनोंके आंचल उठाये चंद्रमाकी किरणों को रोकती हुई जाती है। यहां कृष्णाभिसारिका नायका जानो ॥ २२ ॥

अदर्शनेदर्शनमात्रकामा दृष्ट्वापरिष्वङ्ग-
रसैकलोला॥आलिङ्गितायांपुनरायता
क्ष्यामाशास्महे विग्रहयोरभेदम्॥२३॥

(भा० टी०) जबतक हम स्त्री को नहीं देखते तब तक तो देखनेही की इच्छा रहती है देखते हैं तब उससे आलिंगन रस का सुख चाहते हैं और लिपटने पर यह अभिलाषा रखते हैं कि यह मृगनयनी हमारे शरीर से विलग न हो ॥ २३ ॥

मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी
चन्दनंवपुषि कुंकुमान्वितम् ॥ वक्षसि

प्रियतमा मनो हरा स्वर्ग एष परिशिष्ट आगतः ॥ २४ ॥

(भा० टी०) शीघ्र खिलनेवाली मालतीकी कलियों की माला गलेमें पहिने हों.केसर युक्त चन्दन अंगमें लगाये हों, और सुन्दर प्यारी स्त्रियों को छाती से लिपटाये हों तो यह जानो कि शेष स्वर्गका भोग यहां प्राप्त हुआहै ॥ २४ ॥

प्राङ्मामेति मनागमानितगुणं जाताभिलाषं ततः सव्रीडं तदनु श्लथोद्यत मनुप्रत्यस्तधैर्यं पुनः ॥ प्रेमार्द्रस्पृहणीयनिर्भररहः क्रीडा प्रगल्भा ततो निः शङ्काङ्गविकर्षणादिकसुखं रम्यं कुलस्त्रीरतम् ॥ २५ ॥

(भा० टी०) पहिले तो नहीं नहीं करना यह मनोहर गुण उसमें है फिर अभिलाषा उत्पन्न होना और लज्जा से शरीर को ढील देना धैर्य्य छोड़ना प्रेमरसमें भी घना सराहने योग्य एकान्त क्रीडाका चातुर्य्य विस्तार करना फिर निडर हो अंग खैंचने का अधिक सुखलाभ करना इससे निश्चय जानो कि कुल स्त्रीही की रति अच्छी होती है ॥ २५ ॥

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां मुकुलितनयनानांकिंचिदुन्मीलितानाम् ॥ सुरतजनितखेदस्वार्द्रगण्डस्थलीनामधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ॥ २६ ॥

(भा० टी०) छाती पर लेटीहुईहैं और सुगंधित केश उनके बिखरे हुएहैं, आधे नेत्र मूंदे हुएहैं कुछ कुछ हिल रही हैं मैथुन के श्रमसे उनके गालों पर पसीने झलक रहे हैं ऐसी स्त्रियों के अधरमधुको भाग्यवान् ही पुरुष पान करते हैं ॥ २६ ॥

आमीलितनयनानां यः सुरतरसोऽनु संविदं कुरुते ॥ मिथुनैर्मिथोवधारितमवितथमिदमेव कामनिर्वहणं ॥ २७ ॥

(भा० टी०) आलस्य भरी नेत्रवाली स्त्रियोंको काम से तृप्ति करना यही स्त्री पुरुष दोनों का परस्पर काम पूजन है ॥ २७ ॥

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां यदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः ॥ तदपि च

न कृतं नितम्बिनीनां स्तनपतनावधि जीवितं रतं वा ॥ २८ ॥

(भा० टी०) यह विधाताने पुरुषों में बड़ी अनुचित और उलटी बात उत्पन्न की है की बुढ़ापेमें भी कामका विकार प्रगट होता है ऐसाही स्त्रियोंको भी नहीं किया कि जबलों स्तन न गिरें तभी लों जिए और काम चेष्टा रक्खें ॥ २८ ॥

एतत्कामफलंलोकेयुद्ध्योरेकाचित्तता॥ अन्यचित्तकृतेकामे शवयोरिव संगमः ॥ २९ ॥

(भा० टी०) स्त्री पुरुषके समागममें एकचित्त होजाना कामदेवका यही मुख्य फल है. यदि काममें दोनोंका चित्त और ठौर रहा तो मृतकों कासा संगम होताहै ॥ २९ ॥

प्रणयमधुराःप्रेमोद्गाढा रसादलसास्त-था भणितिमधुरा मुग्धप्रायाःप्रकाशि-तसंमदाः॥ प्रकृतिसुभगा विश्रम्भार्हाः स्मरोदयदायिनो रहसि किमपि स्वैरा लापा हरन्ति मृगीदृशाम् ॥ ३० ॥

(भा० टी०) सुशीलता से मीठे प्रेमरसकी पूर्णता से ढीले स्वरसे सुखदाई सुनने में सुन्दर आनन्द प्रकाश करने वाले सहजही सुडौल विश्वास के योग्य अर्थात् कामदेव के उदय करनेवाले ऐसे एकान्त में स्त्रियों के स्वच्छन्द सुभाषण मनको हरण करलेते हैं ॥ ३० ॥

आवासः क्रियतां गाङ्गे पापवारिणि वारिणि ॥ स्तनमध्ये तरुण्या वा मनोहारिणि हारिणि ॥ ३१ ॥

(भा० टी०) पाप हरनेवाला है जल जिसका ऐसी श्रीगंगाजी के तटपर बसै अथवा युवा स्त्री के उस स्तनों के मध्यमें बसै, जो मनको वशमें करलेता है और जिसपर हार पड़ाहुआ है ॥ ३१ ॥

प्रियपुरतो युवतीनां तावत्पदमातनोतु हृदि मानः ॥ भवति न यावच्चंदनतरुसुरभिर्मधुसुनिर्मलःपवनः ॥ ३२ ॥

(भा०टी०) गर्ववाली स्त्रियोंके हृदयमें यह प्रसिद्ध मान तभी लों ठहरताहै जब लों चंदनकी सुगंधिभरी मलियाचल की स्वच्छ वायु नहीं चलती ॥ ३२ ॥

अथ ऋतुवर्णनम् । तत्रादौ वसन्तस्य ॥

परिमलभृतो वाताः शाखा नवांकुर

कोटयोमधुरविरतोत्कण्ठा वाचः प्रियाः पिकपक्षिणाम् ॥ विरलसुरतस्वेदोद्गारा वधूवदनेन्दवः प्रसरति मधौ रात्र्यां जातो न कस्य गुणोदयः ॥ ३३ ॥

(भा० टी०) सुगंधित पवन चल रही है, वृक्षोंकी शाखों में नये पत्रों के अंकुर निकले हैं. कोकिलादि पक्षियोंकी वाणी मधुर सुंदर उत्कण्ठा भरी प्यारी लगती है, और स्त्रियों के मुखचन्द्र पर रतिश्रमके बिलग प्रस्वेद बूंद के कणों शोभित हैं ऐसी वसंतऋतु की रात्रिमें किस किस वस्तुमें गुणकी ज्योति नहीं प्रकाश होती ।३३।

मधुरयं मधुरैरपि कोकिलाकलकलैर्मलयस्य च वायुभिः ॥ विरहिणः प्राणि हन्ति शरीरिणो विपदि हन्त सुधापि विषायते ॥ ३४ ॥

(भा० टी०) मधुर मधुर कोकिलों के शब्द और मलियाचल के पवन से यह चैत्रमास विरहियोंका वध करता है इससे यह जान पड़ता है कि विपत्तिमें अमृत भी विष होजाता है ॥ ३४ ॥

आवासः किल किंचिदेव दयितापार्श्वे विलासालसः कर्णौ कोकिलकाकली कलरवः स्मेरो लतामण्डपः गोष्ठी सत्कविभिःसमं कतिपयैःसेव्याःसितांशोःकराःकेषांचित्सुखयन्ति नेत्रहृदये चैत्रे विचित्राः क्षपाः ॥ ३५ ॥

(भा० टी०) किल किंचित् विलास से शिथिल हो प्यारी के संग रहना, कानसे कोकिला के शब्दकी कलकलाहट सुनना और चांदनीका सुख उठाना, ऐसी सामग्री से चैत्रमासकी विचित्र रातें किसी पुण्यवानही के हृदय और नेत्रों को सुख देतीहुई वीतती हैं किल किंचित् हाव भाव उसे कहते हैं कि जहां क्रोध, आंसू, हर्ष, प्रीति और रुखाई ये सब भाव एकही समय होंय।३५।

पान्थस्त्रीविरहानलाहुतिकलामातन्वती मञ्जरी माकन्देषु पिकाङ्गनाभिरधुना सोत्कण्ठमालोक्यते ॥ अप्येते नवपाटलापरिमलाः प्राग्भारपाटच्चरा वांति क्लांतिवितानतानवकृतः श्रीखण्ड

शैलानिलाः ॥ ३६ ॥

(भा० टी०) बटोहियोंकी जो विरहिनी स्त्रिया उनकी विरहाग्निमें आहुति कला फैलाती हुई जो आम के बौर के उन्हे कोकिला बड़े अभिलाषसे देखती हैं. इस वसन्तऋतुमें ऐ नवीन पाटल पुष्पके सुगन्धके पुंजको चुरानेवाले और विरह विस्तारको नया करने वाले मलयाचलके पवनभी गमन करते हैं ॥ ३६ ॥

सहकारकुसुमकेसर निकरभरामोदमू- र्च्छितदिगन्ते ॥ मधुरमधुविधुरमधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा ॥ ३७ ॥

(भा० टी० आमकी बौरकी जो केसर उसके समूह की सुगन्ध दिशाओंमें छाय रहीं और मीठे मीठे मक- रन्द पानकर जिसमें भ्रमर उन्मत्त होरहे हैं ऐसे ऋतुराज बसन्तमें किसे उत्कण्ठा नहीं होती ॥ ३७ ॥

अथ ग्रीष्मवर्णनम् ।

अच्छाच्छचन्दनरसार्द्रकरा मृगाक्ष्यो धारागृहाणि कुसुमानि च कौमुदी च॥ मन्दो मरुत्सुमनसः शुचि हर्म्यपृष्ठं ग्रीष्मे मदं च मदनं च विवर्द्धयन्ति ३८

(भा० टी०) अति स्वच्छ चन्दनके रससे जिन स्त्रियोंका हाथ भींगा है फुहारेवाले मंदिर, मन्द सुगन्धित पुष्प, विकसित चांदनी, सुगन्धित लता, मन्द मन्द पवन, और महलकी श्वेत छत ये सब सामग्री ग्रीष्मऋतुमें कामदेवके और मदको बढाते हैं ॥ ३८ ॥

स्रजो हृद्यामोदा व्यजनपवनश्चन्द्रकिरणाः परागः कासारो मलयजरजः सीधु विशदम् ॥ शुचिः सौधोत्सङ्गः प्रतनु वसनं पङ्कजदृशो निदाघे तूर्णं तत्सुखमुपलभन्ते सुकृतिनः ॥ ३९ ॥

(भा० टी०) अच्छी सुगंधित माला, पंखेका वायु, चांदनी, पुष्पोंका पराग, तडाग, चंदन उज्वल मद्य, श्वेत धामकी अच्छी ऊँची छत, अच्छे मलमलसे महीन वस्त्र और कमलनयनी सुंदर स्त्री इत्यादि पदार्थोंसे ग्रीष्म ऋतुमें पुण्यवान् पुरुष सुख उठाते हैं ॥ ३९ ॥

सुधाशुभ्रं धाम स्फुरदमलरश्मिः शशधरः प्रियावक्त्राम्भोजं मलयजरजश्चातिसुरभि ॥ स्रजो हृद्यामोदास्तदिदमखिलं रागिणि जने करोत्यन्तःक्षोभं

न तु विषय संसर्गविमुखे ॥ ४० ॥

(भा० टी०) चूना से सफेद अच्छा उज्ज्वल धाम, निर्मल चांदनीका चन्द्रमा, प्यारी को मुख कमल, सुगंधित चन्दन अच्छे सुगंधित पुष्पों की माला ये सब वस्तु अनुरागी पुरुषों के हृदयमें अत्यन्त क्षोभ करते हैं; परंतु विषयके संसर्ग से जो विमुखहैं उनके हृदयमें नहीं ॥४०॥

अथ वर्षासमयः ।

तरुणी चैषा दीपितकामा विकसित जातीपुण्यसुगन्धिः उन्नतपीनपयोधर भारा प्रावृट् कुरूते कस्य न हर्षम् ॥४१।

(भा० टी०) तरुणी के वेषवाली, कामदेवको उदित करनेवाली, जातिपुष्पके सुगन्धको विकाश करनेवाली, जिसके पुष्ट पयोधर के भार उन्नत हैं ऐसी यह वर्षाऋतु किसको नहीं हर्षित करती है जाती जूही लतावा जावित्री पयोधर मेघ और स्तनको भी कहते हैं ॥४१॥

वियदुपचितमेघं भूमयः कन्दलिन्यो नवकुटजकदम्बामोदिनो गन्धवाहाः॥ शिखिकुलकलकेकारावरम्या वनान्ताः

सुखिनमसुखिनं वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति ॥ ४२ ॥

(भा० टी०) मेघ से व्याप्त आकाश और प्रफुल्लित पृथ्वी अर्थात् नये २ अंकुरोंपर ओस के जलसे पूर्ण, नवीन कुटज और कदम्ब के पुष्पों के समूहों से सुगंधित वायु और मयूरों की झुंडकी सुन्दर वाणी से रमणीय वनके प्रांत, सब सुखी और दुःखी पुरुषों को उत्कण्ठा कामदेव की इच्छा देते हैं ॥ ४२ ॥

उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोपि नर्तितमयूराः॥वसुधाकंदलधवला दृष्टिं पथिकः क यातु संत्रस्तः ॥ ४३ ॥

(भा० टी०) ऊपर घनघोर छाय रहा है, दहिने बाएँ पहाड़ों में मयूर नाच रहे हैं नीचे भूमिकी दूब ओसों से स्वैतरंग हो रही हैं ऐसे समयमें दीन बटोहियों को संतोष कहां से आवे अर्थात् चारों ओर विरह के उद्दीपनही करनेवाले सब सामान हैं ॥ ४३ ॥

इतो विद्युद्वल्लीविलसितमितः केत-कितरोः स्फुरद्गंधः प्रोद्यज्जलदनिनद स्फूर्जितमितः॥ इतः केकिक्रीडा कल-

कलरवः पक्ष्मलदृशां कथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाः संभृतरसाः ॥ ४४ ॥

(भा० टी०) एक तरफ विद्युत् (बिजली) की छटाका विलास, एक ओर केतकीके वृक्षकी उत्कट सुगन्ध, एक और मेघोंकी गर्जना, और एक ओर मयूर (मोर) की क्रीड़ाका कलरशब्द ये सब जहां एकत्र हैं वे विरहके रसभरे दिन स्त्रियोंके किसभांति बीतेंगे ॥४४॥

असूचीसंसारे तमसि नभसि प्रौढजलद्ध्वनिप्राप्ते तस्मिन् पतति दृषदा नीरनिचये ॥ इदं सौदामिन्याः कनककमनीयं विलसितं मुदं च म्लानिं च प्रथयति पथिष्वेव सुदृशाम् ॥ ४५ ॥

(भा० टी०) ऐसे घने अन्धकारमें जिसमें सुई न प्रवेशकरसके जो आषाढ वा श्रावनके मासमें बड़े मेघके शब्द और पत्थर सहित जलवृष्टिमें बिजुलीका बारबार चमकना सो स्त्रियोंको अपने २ बटोही पतियोंके प्रति सुख दुःख उत्पन्न करता है ॥ ४७ ॥

आसारेण न हर्म्यतः प्रियतमैर्यातुं बहिः शक्यते शीतोत्कम्पनिमित्तमायत-

हृशा गाढं समालिंग्यते जाताः शीतल शीकराश्च मरुतो वान्त्यन्तखेदच्छिदो धन्यानां बत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रियासंगमे ॥ ४६ ॥

(भा० टी०) वर्षाकी झडीमें स्त्रीलोग घरके बाहर नहीं निकलसक्तीं हैं और स्त्री प्रीतमसे आलिंगन किये जाती हैं कि बडा जाडा लगता और देह कांपती है यों कह कह इसी निमित्त स्त्रियोंसे प्रीतमभी आलिंगन करते जाते हैं और बाहर नहीं निकलसक्ते और ठंढे २ जलके सूक्ष्म कणोंसहित वायु मैथुनके अन्तमें श्रमहरने वाला बहरहा है ऐसे धन्य पुरुषोंको प्यारीके संगमें दुर्दिनभी सुदिन हो जाते हैं अर्थात् सुख की घडी होजातीहै ॥ ४६ ॥

अथ शरत् ।

अर्द्धं नित्वा निशायाः सरभससुरतायासखिन्नश्लथांगः प्रोद्भूतासह्यतृष्णो मधुमदनिरतो हर्म्यपृष्ठे विविक्ते ॥ संभोगक्लान्तकान्ता शिथिलभुजलतातर्जितं कर्करीतो ज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारंपि-

बतिनसलिलंशारदंमंदभाग्यः ॥४७॥

(भा० टीका०) आधी रात व्यतीत भये पर बेग सहित मैथुन के श्रमसे जिसके अंग थकित, होरहे हैं मध्यमें मत्त, अत्यंत प्यासा, छतपर स्वच्छ और एकान्त ठौर में बैठा, वैसेही मैथुनमें थकी स्त्रीने शिथिल भुजाओं से झारी लाकर दी और चांदनीमें जिसकी स्वच्छ धारा दीख पड़ती है ऐसे शरदऋतुके जलको न पीवे तो मन्दभागी जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना माञ्जिष्ठ वासोभृतः । काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्धव पुषः खिन्ना विचित्रै रतैः ॥ पीनोरः स्थलकामिनीजनकृताश्लेषा गृहाभ्य-न्तरंतांबूलीदलपूगपूरितमुखा धन्याः सुखं शेरते ॥ ४८ ॥

(भा० टी०) दही, दूध, घृत, और सुगन्धित सिखरन भोजन किये, केशर कस्तूरी सघन सर्वांग लगाए, अनेक प्रकार के आसनभेदकी रतिसे खिन्न, पुष्ट जंघा और स्तनवाली स्त्रिया जिन्हे लपटाये पान औ सुपारी खाये, मञ्जीठ के रंग वस्त्रधारण किये प्यारीके साथ धन्य पुरुषही हेमंतऋतुमें सोते हैं ॥ ४८ ॥

चुंबन्तो गंडभित्तीरलकवति मुखे सीत्कृतान्यादधाना वक्षःसूत्कंचुकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः॥ऊरू नाकंपयंतः पृथुजघनतटात्स्त्रंसयंतोंशुकानि व्यक्तंकांताजनानांविटचरितकृ-तःशैशिरावांति वाताः ॥ ४९ ॥

(भा० टी०) यह प्रकार है कि शिशिर ऋतुमें कामियोंके समान आचरण करतेहुये पवन चलते हैं कि स्त्रियोंके कपोलोंको चुंबन करते हैं केशोंवाले मुखमें सीर शब्दको करातेहैं कंचुकी नहीं जिसपरऐसी छाती स्तनोंपर रोमावलीको पैदा करते हैं जंघाओं को कंपाते हैं और मोटी जंघाओंके (रान) वस्त्रोंको उडाते हैं ॥ ४९ ॥

केशानाकलयन्दृशो मुकुलयन्वासो बलादाक्षिपन्नातन्वन्पुलकोद्गमं प्रकट यन्नालिंग्य कम्पञ्छनैः॥वारंवारमुदा-रसीत्कृतकृतोदन्तच्छदान्पीडयन्प्रायः शैशिर एष संप्रति मरुत्कांतासु कांतायते ॥ ५० ॥

(भा० टी०) बालोंको बिखेरता, आंखोंको किञ्चित् २ मूंदता, साड़ी बलात्कारसे उड़ाता, देहमें रोमांचित करता, चलनेमें उद्वेग और कम्प प्रकट करता बेर बेर सीसी करने में ओठोंको पीडित करता, इस प्रकारका शिशिरऋतुका वायु पतिकासा आचरण करताहै ॥५०॥

असाराः सन्त्वेते विरतिविरसायास विषया जुगुप्सन्तां यद्वा ननु सकलदोषा स्पदमिति ॥ तथाप्यन्तस्तत्वे प्रणि हितधियामप्यतिबलस्तदीयोऽनाख्ये यः स्फुरति हृदये कोऽपि महिमा ॥५१॥

(भा० टी०) यह सब भोगविषय असार और वैराग्य में विरस करनेवाले हों और उन्हें सब दोषोंका घर समझकर यदि लोग निंदाभी करें तोभी इन विषयोंकी महिमा अतिबलवान् है कि कहनेके योग्य नहीं, अंत-स्तत्व अर्थात् ब्रह्म विचारमें जिनकी बुद्धि स्थिर हो रही है उनके हृदयमेंभी प्रकाशित होती है ॥५१॥

भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामासगुर वो विदग्धालापानां वयमपि कवीनाम नुचराः ॥ तथाप्येतद्ब्रूमो नहि परहिता

त्पुण्यमधिकंन चास्मिन् संसारे कुवलयदृशो रम्यमपरम् ॥ ५२ ॥

(भा० टी०) तुम वेदांतवेत्ताओंके मंत्रगुरू अर्थात् शिक्षक हो और हैं मर्मा विचित्रकाव्यशास्त्रविनोदी कवियों के दास हैं तथापि यह हम ठीक निवेदन करते हैं कि इस संसार में पराया हित करने से अधिक अन्य पुण्य नहीं और कमलनैनी स्त्रियोंसे अधिक सुंदर वस्तु नहीं ५२

किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापैर्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ॥ अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां स्तनभरपरिखिन्नं यौवनंवा वनंवा ५३

(भा० टी०) युक्तिशून्य प्रलाप अर्थात् बकवादसे क्या प्रयोजन है ! पुरुषोंको दोही वस्तु सर्वदा सेवने योग्य हैं ! का नवीन मदांध लीलाके अभिलाषी और स्तनभार से खिन्न ऐसे सुंदरियों का यौवन अथवा बन ॥ ५३ ॥

सत्यं जना वच्मि न पक्षपाताल्लोकेषु सर्वेषु च तथ्यमेतत् ॥ नान्यन्मनोहारि

नितम्बिनीभ्यो दुःखैकहेतुर्नच कश्चि
दन्यः ॥ ५४ ॥

(भा० टी०) हे लोगो यह हम सत्य कहते हैं इसमें कुछभी पक्षपात नहीं करते संसारमें यह विदित है कि स्त्रियोंसे अन्य मनहरण करनेवाली और दुखदाई कोई वस्तु भी नहीं है ॥ ५४ ॥

अथ दुर्विरक्तप्रशंसा ।

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मल-
विवेकदीपकः ॥ यावदेव न कुरंगचक्षु-
षांताड्यते चपललोचनाञ्चलैः ॥ ५५ ॥

(भा० टी०) विवेकियोंकेभी निर्मल विवेक का दीपक तभीतक प्रकाशित रहता है जबतक मृगनयनी स्त्रियोंके चंचल लोचन रूपी आंचलसे नहीं बुझाया जाता ॥ ५५ ॥

वचसि भवति संगत्यागमुद्दिश्य वार्त्ता
श्रुतिमुखरमुखानां केवलं पण्डिता
नाम् ॥ जघनमरुणरत्नग्रन्थिकाञ्ची

कलापं कुवलयनयनानां को विहातुं समर्थः ॥ ५६ ॥

(भा० टी०) संग त्यागकरनेकी कथा शास्त्रवक्ता पंडितोंके मुखसे केवल कथनमात्रही है नहीं तो लाल-रत्नजड़ित करधनीवाली कमलनयनी स्त्रियोंके जघनस्थल छोड़नेमें कौन समर्थ है ॥ ५६ ॥

स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दति योलीक पण्डितो युवतीः ॥ यस्मात्तपसोऽपिफ लंस्वर्गस्तस्यापिफलंतथाप्सरसः।५७।

(भा० टी०) जो स्त्रियोंकी निंदा करता है वह झूठा पंडित है आप तो ठगाही गया पर औरोंको भी ठगाता है क्यों कि तपस्याका फल स्वर्ग और स्वर्गका फल अप्सरा भोग है सो यह प्राप्त है ॥ ५७ ॥

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः ॥ किं तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः।५८।

(भा० टी०) उन्मत्त हाथीके मस्तक बिदारनेवाले शूर इस पृथ्वी पर अनेक हैं और प्रचंड सिंहके मारनेमें

दक्ष योधाभी कितनेही हैं परन्तु बलवानोंके आगे हम हठकर यह कहते हैं कि कामदेवके मदका दलनेवाला कोई विरलाही पुरुष होगा ॥ ५८ ॥

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति स नरस्ताव देवेन्द्रियाणां लज्जां तावद्विधत्ते विन यमपि समालम्बते तावदेव भ्रूचापाकृष्ट मुक्ताः श्रवणपथगता नीलपक्ष्माण एते यावल्लीलावतीनां न हृदि धृति मुषोदृष्टिबाणाःपतन्ति ॥ ५९ ॥

(भा० टी०) पुरुष सत्मार्गमें तभी तक रहता इंद्रियोंको उसी समयतक वशमें रख सक्ता है और लज्जा विनयभी उसी कालतक रहतेहैं जबतक श्याम-बरौनी पलखरूपी पंख धारण किये.भौंरूपी धनुपन छोडे कानोंतक फैले धैर्य्य छुड़ानेवाले लीलावती सुंदर स्त्रियों के नयनरूपी बाण छूटकर हृदयमें नहीं लगते ॥ ५९ ॥

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादारभन्ते यदंगनाः ॥ तत्र प्रत्यूहमाधातुं ब्रह्मापि खलु कातरः ॥ ६० ॥

(भा० टी०) अति प्रेमके उमंगसे उन्मत्त हो कर

स्त्रीलोग जिस कामका आरम्भ करदेती हैं उस काम के रोकनेकी ब्रह्माकीभी शक्ति नहीं ॥ ६० ॥

तावन्महत्त्वंपाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकिता ॥ यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हंत पञ्चेषुपावकः ॥ ६१ ॥

(भा० टी०) बड़ाई पंडिताई विवेक और कुलीनता ये सब मनुष्यकी देहमें तभीतक रहती हैं जबतक शरीर में कामाग्नि नहीं प्रज्वलित होती ॥ ६१ ॥

शास्त्रज्ञोऽपि प्रथितविनयोऽप्यात्मबोधोऽपिबाढं संसारेऽस्मिन् भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम् ॥ येनैतस्मिन्निरयनगरद्वारमुद्घाटयन्ती वामाक्षीणां भवति कुटिलभ्रूलताकुञ्चिकेव॥६२॥

(भा० टी०) शास्त्रज्ञ और विनयपूर्वक प्रसिद्ध और ज्ञानी हो परन्तु इस संसारमें दृढ़तासे सद्गतिका पात्र कोई विरलाही पुरुष होता है इस हेतु यहां नर्कनगरके द्वारके तालेको सुंदर नेत्रवाली स्त्रियोंकी टेढ़ी भौंह लता घूमती कुंजीके समान खोलती हैं ॥ ६२ ॥

कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुच्छ

विकलो व्रणीपूयाक्लिन्नः कृमिकुलशतै रावृततनुः ॥ क्षुधाक्षामोजीर्णोऽपि कर ककपालार्पितगलः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः ॥ ६३ ॥

(भा० टी०) दुर्बल काना लंगड़ा बहिरा पूंछसे हीन जिसके घावोंमें राध भरीहो और शरीरपर कीडे फिरते हो भूखसे थका वृद्ध मिट्टीके घेरका कण्ठ जिसके गलेमें हो ऐसाभी श्वान कुत्तीके पीछे भोगके लिये जाता है इससे यह सिद्ध हुआ कि कामदेव मरे को भी मारता है ॥ ६३ ॥

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य जननीं सर्वार्थ सम्पत्करी येमूढाःप्रविहायांतिकुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः ॥ तेतेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डताः केचित्पञ्च शिखीकृताश्चजटिलाः कापालिकाश्चापरे ॥ ६४ ॥

(भा० टी०) स्त्रिया कामदेवकी मुद्रा सब अर्थ और संपत्की करनेवाली हैं जो मूढ कुबुद्धि उन्हे छोड़स्वर्गादि

की इच्छासे निकल भागता है उन्हें विरक्तके वेषमें न समुझो किन्तु कामदेवने दया त्यागि दण्ड देकर उन्हें नंगा किया, सिर मुंडवाया, किसीके पांच चोटी जटा रखवाई, हाथमें ठीकरा दे भीख मंगवाया ॥ ६४ ॥

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बु पर्णाशनास्तेऽपिस्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ॥ शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवा स्तेषामिंद्रियनिग्रहो यदिभवेद्विंध्यस्तरेत्सागरं ॥ ६५ ॥

(भा० टी०) विश्वामित्र पराशर इत्यादि बड़े बड़े ऋषी जो वायु जल और पत्ते खायपीके रहजातेथे वेभी स्त्री मुखकमल को देख मोहको प्राप्त हुए अब जो मनुष्य अन्न घी दूध दही इत्यादि अच्छे व्यञ्जन भोजन करते हैं उनकी इंद्रिया जो वशमें होजांय तौ समुद्रपर विंध्याचलके तैरनेमें क्या आश्चर्य है अर्थात् इंद्रियोंको वशमें नहीं करसक्ते हैं ॥ ६५ ॥

॥ इति दुर्विरक्तप्रशंसा समाप्ता ॥

संसारेस्मिन्नसारे कुनृपति भुवनद्वार

सेवावलम्बव्यासगव्यस्तधैर्यं कथममलधियो मानसं संविदध्युः ॥ यद्येताः प्रोद्यदिंदुद्युतिनिचयभृतो न स्युरम्भोजनेत्राः प्रेंखत्कांचीकलापाःस्तनभरविनमन्मध्यभागास्तरुण्यः ॥ ६६ ॥

(भा० टीका०) उदितचंद्रमाकीसी कांतधरी कमलनेत्रवाली झूलती हुई करधनीकी लारियोंवाली और स्तनभारसे झुकी कटिवाली युवती स्त्री यदि नहो अर्थात् इनसे स्नेह न होय तौ इस असार संसारमें निर्मल बुद्धिवाले मनुष्य खोटेराजोंके द्वारकी सेवा नानाभांतिके कलंकसे अधीरचित्त होकर क्यों करें ॥ ६६ ॥

सिद्धाध्यासितकन्दरे हरवृषस्कन्धावगाढद्रुमे गङ्गाधौताशिलातले हिमवतः स्थाने स्थिते श्रेयसि ॥ कः कुर्वीत शिरः प्रणाममलिनं मानं मनस्वी जनो यद्यत्रस्तकुरङ्गशावनयना न स्युः स्मरास्त्रं स्त्रियः ॥ ६७ ॥

(भा० टी०) सिद्धलोग जिस कंदरामें बैठे हैं और

महादेवजी का बैल जहां वृक्षोमें कंधा रगडता फिरता है और गंगाजलसे जहांके पाषाण धोयेजाते हैं ऐसा हिमालय का स्थान कल्याणदायक छोड़कर कौन मनुष्य स्त्री पुरुष लोगोंके समीप जाकर माथा झुकाय प्रणाम कर अपने मानको मलीन करता यदि भीत रहित हरिण शावकनयना कामास्त्र स्वरूप कामिनी घरमें न होती ॥ ॥ ६७ ॥

संसार तव निस्तारपदवी न दवीयसी ॥ अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि रे मदिरेक्षणाः ॥ ६८ ॥

(भा० टी०) हे संसार तुझसे पार होना कुछ दुस्तर न था यदि अच्छे नेत्रवाली कठिन स्त्रिया बीचमें बाधक न होतीं ॥ ६८ ॥

अथ यौवनप्रशंसा ।

राजंस्तृष्णांबुराशेर्नहि जगति गतः कश्चिदेवावसानं को वार्थोऽर्थैःप्रभूतैः स्ववपुषि गलिते यौवने सानुरागे ॥ गच्छामःसद्म तावद्विकसितनयनेंदीवरालोकनानां यावच्चाक्रम्यरूपं झटि-

तिन्न जरयालुप्यते प्रेयसीनां ॥६६॥

(भा० टी०) हे महाराज ! इस तृष्णारूपी समुद्र के कोई पार न गया और जब हमारी अनुराग भरी युवा अवस्था देहही में जीर्ण होगई तब अधिक द्रव्यही प्राप्त करके हमको क्या करनाहै तो शीघ्रही अपने घर चले जांय ऐसा न हो कि विकसितकुमुद और कमल ऐसे नेत्रवाली हमारी प्यारियों को रूप वृद्धास्था घुला२ बिगाड़ न डाले यहां कुमुद रात्रिविकाशी और कमल दिन विकाशी से अभिप्राय है इससे यह सूचना होती है कि वे रात दिन हमारा मारग देखती होंगी ॥ ६९ ॥

॥ इति स्त्रीणां परित्यागविधिः ॥

रागस्यागारमेकं नरकशतमहादुःख संप्राप्तिहेतुर्मोहस्योत्पत्तिबीजंजलधर पटलं ज्ञानताराधिपस्य ॥ कन्दर्पस्यै कमित्रं प्रकटितविविधस्पष्टदोषप्रबन्धं लोकेऽस्मिन्नह्यनर्थं निजकुलदहनंयौ-वनादन्यदस्ति ॥ ७ ॥

(भा० टी०) अनुरागका घर, सैकड़ों नरकों के दुःख प्राप्त होनेका हेतु, मोहकी उत्पत्तिका बीज, ज्ञानरूपी

चंद्रमाके ढाकनेका मेघ, कामदेवका एकही मित्र, अनेक दोषों का प्रगट करनेवाला, और वैराग्य और नीति का हरण करनेवाला, इस लोकमें युवा अवस्था के व्यतिरिक्त (भिन्न) दूसरा कोई अनर्थ नहीं ॥ ७० ॥

शृङ्गारद्रुमनीरदे प्रचुरतः क्रीडारसस्त्रोतसि प्रद्युम्नप्रियबान्धवे चतुरतामुक्ताफलोदन्वति ॥ तन्वीनेत्रचकोरपारणविधौ सौभाग्यलक्ष्मीनिधौ धन्यः कोऽपि न विक्रियां कलयति प्राप्ते नवे यौवने ॥ ७१ ॥

(भा० टी०) शृङ्गाररूपी वृक्षोंका सींचनेहारा मेघ, विस्तारित क्रीडारसका सोता, कामदेवका प्यारा भ्राता, चतुरतारूपी मोतियोंका समुद्र, स्त्रियों के नेत्ररूपी चकोर का पूरणचन्द्र और सौभाग्य लक्ष्मीका एकपात्र ऐसी युवा अवस्था पाकर जो पुरुष विकारको नहीं प्राप्त होता सो धन्य है ॥ ७१ ॥

अथ कामिनीगर्हणप्रशंसा ॥

कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रोणीभरेत्युत्सुकः पीनोत्तुङ्गपयोधरेति सुमु-

खाम्भोजातिसुभ्रूरिति ॥ दृष्ट्वा माद्यति मोदतेऽतिरमते प्रस्तौति जानन्नपि प्रत्यक्षाशुचिपुत्तिकां स्त्रियमहो मोहस्य दुश्चेष्टितं ॥ ७२ ॥

(भा० टी०) कांता. कमलनयनी. बड़े नितम्बवाली. पुष्ट और उत्तुंग ऊंचे स्तनवाली सुन्दर कमलमुखी और सुन्दर भौंहवाली. यों कहकह पण्डित लोगभी स्तुति करते हैं और देखके मोहित होतेहैं आनन्द पाते रमण करते और उत्कण्ठित होतेहैं प्रत्यक्षही अपवित्रताकी पुतली रूप स्त्री है उसपर देखो यह मोह की क्या खोटी चेष्टाहै ७२

स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादवर्द्धिनी ॥ स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम् ॥ ७३ ॥

(भा० टी०) जो स्मरण से सन्ताप देती है देखनेसे उन्माद बढाती अर्थात् मदवाला करदेती है और स्पर्श से मोहित करलेती है ऐसी स्त्रियों को प्रिया क्यों कहते हैं ॥ ७३ ॥

तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरा॥

चक्षुःपथादपगता विषादप्यतिरिच्यते॥ ॥ ७४ ॥

(भा० टी०) स्त्री तभी लों अमृतमयहै जबलों नेत्र के सामने है नेत्र से जब दूर हुई तब विषसे भी अधिक होजाती है अर्थात् विरहसे सन्ताप देती है ॥ ७४ ॥

नामृतं न विषं किञ्चिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ॥ सैवामृतलता रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ॥ ७५ ॥

(भा० टी०) स्त्रियोंसे परे न कोई अमृत है न विष यदि वह प्रीति करै तो अमी लता है और प्रीति तोड़ बैठे तो विषकी मंजरी है ॥ ७५ ॥

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां दोषाणांसन्निधानं कपट शतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ॥ स्वर्ग द्वारस्य विघ्नो नरकपुरमुखं सर्वमाया करण्डं स्त्रीयन्त्रंकेन सृष्टंविषममृत मयंप्राणिनां मोहपाशः ॥ ७६ ॥

(भा० टी०) संशयोंका भँवर अविनयका घर साहस

का नगर दोषोंका पात्र अविश्वास और सैकड़ों कपट का खेत स्वर्गद्वारका विघ्नकारक नरकनगरका द्वार मायोंका पेटारा अमृतलपेटा विष और प्राणियों के फंसानेका फंदा ऐसा स्त्रीरूपी यंत्र किसने वा ब्रह्माने सृजा है ॥ ७६ ॥

सत्यत्वेन शशांक एष वदनीभूतो नवे न्दीवरद्वन्द्वं लोचनतां गतं न कनकैर-प्यङ्गयष्टिः कृता ॥ किन्त्वेकंक विभिः प्रतारितमनस्तत्त्वं विजानन्नपित्वङ्मांसास्थिमयं वपुर्मृगदृशां मंदो जनः सेवते ॥ ७७ ॥

(भा० टी०) देखो तो सच चन्द्रमाही मुख नहीं बन गया कमलही दोनों नेत्र नहीं हुए स्वर्णही से देह नहीं बना है यह स्त्रियों का शरीर चाम मांस और हाडमय है परन्तु यह बात जानकर भी कवियों के बहकाने से अन्धे अर्थात् विवेक रहित मनुष्य उसे सेवन करतेहैं॥७७॥

लीलावतीनां सहजा विलासास्तएव मूढस्य हृदि स्फुरन्ति॥ रागो नलिन्या हि निसर्गसिद्धस्तत्र भ्रमत्येव मुदा

षडंघ्रिः ॥ ७८ ॥

लीलावती स्त्रियोंका लीलाकरना सहज स्वभाव है सोई मूढोंके हृदयमें वशीकरन हो लगता है जैसे कमलिनीमें ललाई स्वभाविक होती है भ्रमर उसपर व्यर्थही आशक्त होकर घूमता है अर्थात् वह समुझता है कि मेरेही लिये ललाई चमकाय रही है ॥ ७८ ॥

यदेतत्पूर्णेन्दुद्युति हरदुदाराकृति वरं मुखाब्जं तन्वंग्याः किल वसति तत्राधरमधु ॥ इदं तावत्पाकद्रुमफलमिवातीव विरसंव्यतीतेऽस्मिन्काले विषमिवभविष्यत्सुखदं ॥ ७९ ॥

(भा० टी०) पूर्णमासीके चन्द्रमाकी छबि हरनहार सुन्दर आकारवाली स्त्रियोंका मुखकमल जिसमें अधरामृत रहता है वह अज्ञात वा युवा अवस्थामें अच्छा लगता है फिर वह कालव्यतीत होनेपर ज्ञात वा वृद्धापन प्रात होनेसे मदारके फल और विषसा बुरा लगेगा ॥७९॥

उन्मीलत्त्रिवलीतरङ्गनिलया प्रोत्तुङ्ग पीनस्तनद्वन्द्वेनोद्यतचक्रवाक मिथुना वक्राम्बुजोद्भासिनी ॥ कान्ताकारधरा

नदीयमभितः क्रूराशया नेष्यते संसारार्णवमज्जनं यदिततो दूरेणसंत्यज्यताम् ॥ ८० ॥

(भा० टी०) शोभितपेटकी त्रिवलीही तरंगका समूह है उत्तुंग और पुष्टदोनों स्तनही उसमें चक्रवाकके जोड़े हैं जिसका गंभीर आशयो मुखरूपी कमल से शोभित है ऐसी स्त्रीका आकार धारण किये नदी है सो हे पुरुषो! जो तुम संसार समुद्र में न मग्न हुआ चाहो तो इसे दूर हीसे परित्याग करो इसका यह तात्पर्य्य है कि नदीमें गिरी वस्तु घूम फिरके समुद्रमें जा पड़ती है ॥ ८० ॥

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ॥ हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियःको नाम योषिताम् ॥ ८१ ॥

(भा० टी०) बातें तो किसी अन्य पुरुषसे करती हैं और विलास सहित औरहीकी ओर देखती हैं और हृदयमें औरहीसे मिलनेकी चाह रखती हैं फिर कहो तो इनमेंसे कौन स्त्रियोंको प्यारा है सो नहीं जान पड़ता॥ ॥ ८१ ॥

मधुतिष्ठतिवाचियोषितां हृदिहाला-

हलमेव केवलं अतएव निपीयतेऽधरो
हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते ॥ ८२ ॥

(भा० टी०) स्त्रियोंके अधरमें अमृत और छातियों में विष रहताहै इसी हेतु लोग अधरपान करतेहैं और छातीमें मुष्टिका प्रहार करते हैं ॥ ८२ ॥

अपसर सखे दूरादस्मात्कटाक्षशिखा-
नलात्प्रकृति विषमाद्योषित्सर्पाद्विला-
सफणाभृतः ॥ इतरफणिना दष्टाः
शक्याश्चिकित्सितुमौषधैश्चतुरवनिता
भोगिग्रस्तं त्यजन्ति हि मन्त्रिणः।८३।

(भा० टी०) हे मित्र ! सहजही क्रूर और विलास रूपी विषाग्निसे दूर भाग क्यों कि अन्य सर्पों का डसा हुआ औषधीसे अच्छा होसक्ताहै पर चतुर स्त्रीरूपी सर्प के डसे हुयेको मन्त्रतन्त्र वाले भी छोड़ भागते हैं ॥८३॥

विस्तारितं मकरकेतनधीवरेण स्त्री
संज्ञितं बडिशमत्र भवाम्बुराशौ॥येना-
चिरात्तदधरामिषलोलमर्त्य मत्स्यान्
विकृष्य पचतीत्यनुरागवह्नौ ॥ ८४ ॥

(भा० टी०) इस संसाररूपी समुद्रमें कामदेवरूपी केवट ने स्त्रीरूपी जालको इसलिये फैलाया है कि वह कामदेव मनुष्यरूपी मच्छ उसके अधरमांसके जो लोभी हैं उन्हें वशमें कर अनुरागरूपी अग्निमें पकाता है ॥ ८४ ॥

कामिनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे॥ मा संचर मनःपान्थ तत्रास्ते स्मर-तस्करः ॥ ८५ ॥

(भा० टी०) स्त्रियोंका शरीररूपी बन जो कुचरूपी पर्वतोंसे अतिदुर्गम हो रहा है उसमें हे बटोही मन तूं मत जा तहां कामदेवरूपी चोर रहता है ॥ ८५ ॥

व्यादीर्घेण चलेन वक्रगतिना तेज-स्विना भोगिना नीलाब्जद्युतिनाहिना वरमहं दष्टो न तच्चक्षुषा ॥ दष्टे संति चिकित्सका दिशि दिशि प्रायेणधर्मा र्थिनो मुग्धाक्षीक्षणवीक्षितस्य नहि मे वैद्यो न चाप्यौषधम् ॥

८ (भा० टी०) बड़ा लम्बा चञ्चल टेढ़ी चालवाला और तेजवाला फणधारी नीलकमलसा काला सर्प जो मनुष्य को काट ले तो अच्छा परन्तु स्त्रीके कटाक्षका काटा

अच्छा नहीं क्योंकि सांप के डसे को बचानेवाले सब देशमें बसते हैं प्राय: धर्मार्थीभी होते हैं पर अच्छे नेत्र-वाली स्त्री की दृष्टि से काटेहुये को न कोई मन्त्र ही है न औषधि है ॥ ८६ ॥

इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एष स्तनानाम् ॥ इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणो ह्यहितकरणदक्षैः पञ्चभिर्वञ्चितोऽस्मि ॥ ८७ ॥

(भा० टी०) यह कैसी सुन्दर मधुर गीतहै, रूप देखो कैसा अच्छा है, इस वस्तु का रस कैसा स्वादिष्ट है, इस वस्तु की कैसी अच्छी सुगंधि है, स्त्री के स्तनोंका स्पर्श क्या अच्छा सुख देता है इस भांति पर लोकके नष्ट करनेवाली और अपने प्रयोजन साधने में अति धूर्त्त है इन पाचों ज्ञानेन्द्रियोंसे हे नर! तू हेरफेर कर ठगाही गया ॥ ८७ ॥

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्य विषयो न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः ॥ भ्रमावेशा

दङ्गे किमपि विदधद्भव्यमसमं स्मरो ऽपस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयतिच ॥ ८८ ॥

(भा० टी०) यह कामदेव रूपी अपस्मार (मृगी) रोग भ्रमके आवेश से बड़ा दुःखदाई शरीरको तोड़ता और मनको भ्रमाता नेत्रों को घुमाता है और इस रोग में मंत्रों की गति नहीं औषधी भी नहीं काम करती अनेक प्रकार की शांति अर्थात् पाठ पूजादि से भी नाश नहीं होता ॥ ८८ ॥

जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णाखिलाङ्गाय च ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च ॥ यच्छन्तीषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मीलव श्रद्धया पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिका-शस्त्रीषु रज्येत कः ॥ ८९ ॥

(भा० टी०) जन्मांध कुरूप वृद्धापन से शिथिलांग गंवार नीच जाति और टपकते कोढ़से भरे पुरुषोंकोभी अपनी सुन्दर देह थोड़े धनकी आशासे समर्पण करती है ऐसी वेश्या विवेक रूपी कल्प लता को छुरीसी हैं उस

से कौन बुद्धिमान् रमै ॥ ८९ ॥

वेश्यासौमदनज्वालारूपेन्धनसमेधिता कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥ ९० ॥

(भा० टी०) वेश्या तो कामाग्निकी ज्वालाहै रूपरूपी इन्धन से प्रचण्डहै कामी पुरुष उसीमें अपना धन और यौवन होम करते हैं ॥ ९० ॥

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि । चारभटचौरचेटकनटविट निष्ठीवनशरावम् ॥ ९१ ॥

॥ इतिकामिनीनिगर्हणम् ॥

(भा० टी०) वेश्याका अधरपल्लव यदि सुन्दर है तौ भी उसे कौन कुलीन पुरुष चूंबे क्योंकी ठग ठाकुर चोर नीच नट इत्यादि और जारों के थूकने का ठीकरा है॥९१॥

अथ सुविरक्तप्रशंसा ॥

धन्यस्त एव तरलायत लोचनानां तारुण्य रूपघनपीन पयोधराणाम् ॥ क्षामोदरो परिलसत्त्रिवली लतानां

दृष्ट्वाकृतिंविकृतिमेतिमनोनयेषाम् ९२

(भा० टी०) चञ्चल बड़े नेत्रवाली यौवन के अभिमान से भरी दृढ और पुष्टस्तनवाली जिनके कृशोदर पर त्रिवलीलता शोभती है ऐसी स्त्रियोंकी आकृति देख कर जिन पुरुषों के मनमें विकार नहीं उत्पन्न होता वे धन्य हैं ॥ ९२ ॥

बाले लीलामुकुलितममी सुन्दरा दृष्टि पाताः किं क्षिप्यन्ते विरम विरम व्यर्थ एष श्रमस्ते ॥ सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते क्षीणोमोहस्तृण मिवजगज्जालमालोकयामः ॥ ९३ ॥

(भा० टी०) हे बाले ! लीला से किंचित् विकासित और सुन्दर कटाक्ष हमपर क्या फेंकतीहै विश्राम लेले हमारे प्रति तेरा यह श्रम व्यर्थ है क्योंकि अब हम कुछ औरही होगये लड़कपन हमारा छूट गया वनमें रहते हैं मोह भी क्षीण होगया और इस जगत् के जालको तृण समान देखते हैं ॥ ९३ ॥

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवर-दलप्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभि-

प्रेतमनया ॥ गतो मोहो ऽस्माकं स्मर शबरबाणव्यतिकरज्वलज्ज्वालाःशा न्तास्तदपिनवराकीविरमति ॥ ९४ ॥

(भा० टी०) इस बाला स्त्री का क्या अभिप्राय है जो यह कमलदलोंकी प्रभाके तिरस्कार करनेवाले नेत्रों को मेरी तरफ चलाती है अब हमारा अज्ञान गया और कामदेवरूपी भीलके बाणोंसे उठीहुई अग्नि शांति होगई तोभी यह मूर्खिणी बाला विरामको प्राप्त नहीं होती अर्थात् नेत्रों का फेंकना नहीं छोड़ती ॥ ९४ ॥

शुभ्रं सद्म सविभ्रमा युवतयः श्वेतात पत्रोज्ज्वला लक्ष्मीरित्यनुभूयते स्थिर मिव स्फीते शुभे कर्मणि ॥ विच्छिन्ने नितरामनङ्ग कलहक्रीडात्रुटत्तन्तुकं मुक्ताजालमिव प्रयाति झटिति भ्रश्य- द्दिशो दृश्यतां ॥ ९५ ॥

(भा० टी०) उज्ज्वल घर अच्छे हावभावयुक्त स्त्री- जन और श्वेत छत्रसहित शोभायमान लक्ष्मी तबही स्थिरतासे भोगमें आती है जब पुण्यकी वृद्धि हो और जब पुण्य क्षय होजाता है तब देखो कामदेवकी क्रीडा

के कलहसे टूटे हारके मोतियों के समान भ्रष्ट हो सब भोग शीघ्रही देशांतरोंमें लुप्त होजाता है ॥ ९५ ॥

सदा योगाभ्यासव्यसनवशयोरात्म-मनसोरविच्छिन्ना मैत्री स्फुरति यमि-नस्तस्य किमु तैः ॥ प्रियाणामालापैर धरमधुभिर्वक्रविधुभिःसनिश्वासामोदैः सकुचकलशाश्लेषसुरतैः ॥ ९६ ॥

(भा० टी०) जिनके आत्मा और मनकी सदा योगाभ्योसहीके व्यसनसे निरंतर मित्रता फुरती फिर उन्हे प्रियस्त्रियों के सम्भाषण, अधरामृत, स्वासों की सुगन्धसहित, मुखचंद्र और कुचकलशोंको हृदयसे लगा कर सुरतिसे क्या प्रयोजन है ॥ ९६ ॥

किं कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदंड-झङ्कारितै रेरे कोकिल कोमलं कलरवं किं त्वं वृथा वल्गसे ॥ मुग्धे स्निग्धवि-दग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं चेत-श्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ॥ ९७ ॥

(भा० टी०) अरे क्षुद्र कामदेव अपने धनुष के टंकोर शब्दसे हमको क्या त्रास देता है अरे कोकिल कोमल मधुर शब्दसे क्या वृथा बोलता है और हे सुंदरी प्रेम और चतुराईसे भरे सुंदर मधुर चंचल कटाक्ष अब तू मत चला मेरा अस्वादित चंद्रचूड शिवजीके चरण ध्यानरूपी अमृतमें मग्न हो रहा है ॥ ९७ ॥

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंचारजनितं तदा सर्वं नारीमयमिदमशेषं जगदभूत् इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनदृशां समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते ॥ ९८ ॥

(भा० टी०) कामदेवरूपी तिमिर रोगसे उत्पन्न अज्ञान जब तक मुझमें था तबतक समस्त जगत् स्त्रीमय दृष्टि पडता रहा अब हमने सुंदर विवेकरूपी अञ्जन लगाया है तो समदृष्टी हो गई त्रैलोक्य ब्रह्ममय दीख पड़ता है ॥ ९८ ॥

वैराग्ये संचरत्येको नीतौ भ्रमति चापरः ॥ शृङ्गारे रमते कश्चिद्भुवि भेदाः परस्परम् ॥ ९९ ॥

(भा० टी०) कोई पुरुष वैराग्यमें संचार करता कोई नीतिमें प्रवृत्त रहता और कोई शृंगारमें रमता है यों परस्पर मनुष्योंमें इच्छाका भेद है इस लिये भर्तृहरीजी का तात्पर्य यह है कि तीन प्रकारके मनुष्योंके हेतु तीन शतक निर्माण किये हैं ॥ ९९ ॥

इति सुविरक्तप्रशंसा ।

यद्यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तस्या- स्पृहा मनोज्ञेऽपि ॥ रमणीयेऽपि सुधांशौ नमनःकामःसरोजिन्याः १००

(भा० टी०) जिसपदार्थमें जिसकी रुचि नहीं होती चाहै वह सुंदरभी हो तोभी उसे उसकी इच्छा नहीं होती क्योंकि रमणीयचंद्रमामें कमोदनी की इच्छा नहीं होती ॥ १०० ॥

॥ इति शृङ्गारशतकं सटीकं संपूर्णम् ॥

॥ श्रीः ॥

भर्तृहरिशतक

अथ वैराग्यशतक प्रारम्भः

भाषा टीका सहित।

बाबू दीपचन्द मैनेजर

के प्रबन्ध से

"मुलतानमल प्रिन्टिंग प्रेस"

में छपा।

छा० नीमच

विक्रम संवत् १९५७

श्रीः ।

अथ भर्तृहरिकृतम् ।

वैराग्यशतकम् ।

श्री गणेशाय नमः ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्त चिन्मात्र मूर्त्तये ॥ स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥ १ ॥

(भा० टी०) दिशा और काल जिसकी मूर्तिका संकोच नहीं कर सक्त और जो अंतरहित और चैतन्य रूप है और जो अपनेही अनुभवसे जानाजाता है ऐसे शांत और तेजोरूप ब्रह्मको नमस्कार है ॥ १ ॥

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मय-दुषिताः ॥ अबोधोपहता श्चान्ये जीर्णा

मङ्के सुभाषितम् ॥ २ ॥

(भा० टी०) विद्या अभिमानी लोग तो अपने मत्सरही से ग्रसित हैं और धनवान् लोग अपने द्रव्यके गर्वमें किसी गुणीका आदरही नहीं करते और जो हैं सो साधारण अल्पज्ञ हैं इसलिये उनसे कहनेको भी जी नहीं चाहता इन कारणोंसे सुभाषित (उत्तम काव्य) शरीरही में जीर्ण होजाता है अर्थात् कदाचित संसारमें प्रकट नहीं होता ॥ २ ॥

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः ॥ महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिग्रहीताश्च विषया महान्तो जायन्ते व्यसनमिवदातुं विषयिणाम् ॥ ३ ॥

(भा० टी०) सांसारिक उत्पन्न चरित्रमें हम कुशल नहीं देखते और पुण्यफल स्वर्गादि विचारसे भयदायकही देखपडता है अर्थात् पुण्य क्षय होनेपर वहांसेभी पतन होते हैं और बहुत दिनपर्यन्त पुण्यके समूहसे इस लोक में जो विषयादि संचित किया है वहभी विषयाशक्तोंको अन्तसमय दुःखदायकही है ॥ ३ ॥

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता

गिरेर्धातवो निस्तीर्णाः सरितां पतिर्नृ-पतयो यत्नेन संतोषिताः ॥ मन्त्रा राधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः प्राप्तःकाणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुनामुञ्च मां ॥ ४ ॥

(भा० टी०) द्रव्य मिलनेकी आशासे मैंने ठौर ठौर भूमि खोदी रसायन सिद्ध होनेके निमित्त पर्वतकी अनेक धातुओंको फूंकडाली देशान्तर से धन वा रत्न प्राप्तिके हेतु समुद्रभी मथडाला और बड़ प्रयत्न से राजाओंको भी प्रसन्न किया और मंत्र सिद्ध करने के निमित्त मन लगाकर निरंतर रातोंको महा श्मशानमें बैठे जागा किया परन्तु यथार्थ मुझे एक कौडीभी हाथ न आई अन्तकाल हेतृष्णा अबतो मेरा पिण्ड छोड ॥ ४ ॥

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किंचित्फलं त्यक्त्वा जातिकुलाभि-मानमुचितं सेवा कृता निष्फला भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काक वत्तृष्णेदुर्मतिपापकर्मनिरते नाद्यापि

संतुष्यसि ॥ ५ ॥

(भा० टी०) दुर्गम अनेक देशोंमें मैंने भ्रमण किया पर कुछ फल न प्राप्त हुआ यथार्थ जाति और कुलका अभिमान त्याग कर पराई सेवा की सोभी व्यर्थ हुई अपमानसे कौवे के समान सशंकित परघर भोजन भी करता रहा हेतृष्णा दुर्मति और पापकर्ममें प्रवृत्त तू अबतक संतोष नहीं पकड़ती ॥ ५ ॥

खलोल्लापाः सोढा कथमपि तदाराधनपरैर्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा ॥ कृतश्चित्तस्तम्भः प्रहसितांधेयामञ्जलिरपि त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्त्तयसिमाम् ॥ ६ ॥

(भा० टी०) खलोंकी सेवा करनेमें हमने तिनके ठट्ठे और कुतर्क वाक्य सहे हृदय नेत्र आंसूको रोक उनके आगे उदास मनसे हँसा किये और चित्त स्थिर कर उन हँसनेवालोंके सम्मुख हाथभी जोड़ा हेतृष्णा व्यर्थ आशा करनेवाली इससे अधिक अब क्या नचाती है ॥ ६ ॥

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते

जीवितं व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥ दृष्ट्वा जन्म जराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्त भूतं जगत् ॥ ७ ॥

(भा० टी०) सूर्य्यके उदय अस्त होनेसे दिन प्रति दिन आयु घटती जातीहै अनेक कार्यों कर भारी व्यापार में काल का बीतना नहीं जाना जाता और जन्म वृद्धापन विपत्ति और मरण देखकेभी त्रास नहीं होता इससे यह निश्चित हुआ कि मोहमयी प्रमादरूपी मदिरा पीके जगत् मतवाला हो रहा है ॥ ७ ॥

दीना दीनमुखैःसदैवशिशुकै राकृष्ट जीर्णाम्बरा क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा दृश्येत चेद्गेहिनी ॥ याञ्चा भङ्गभयेन गद्गदलमत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं ॥ कांदेहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थेमनस्वीजनः ॥ ८ ॥

(भा० टी०) दीनों से भी दीन है मुख जिनका ऐसे

बालक जिस स्त्री के फटे वस्त्रों को खींचते हों और अन्नके लिये रोतेहुये गृहके इतरमनुष्यों से जो दुःखित हो ऐसी घरवाली (पत्नी) न होय तो ऐसा कौन धीर मनुष्य है जो केवल अपने उदर भरने के लिये यांचा (मांगना) के भंग (नाहीं) के डरसे गद्गद वाक्यों से टूटे फूटे अक्षरोंवाली देही इसवाणीको कहै अर्थात् स्त्रीही सब कहवाती है और पूरा बंधन है ॥ ८ ॥

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः ॥ शनैर्यष्ट्योत्थानं घन तिमिररुद्धे च नयने अहोधृष्टःकायस्त दपि मरणापायचकितः ॥ ९ ॥

(भा० टी०) विषयभोग की इच्छा न्यून हुई, लोगोंमें अपना मानभी घटा, बराबरी वालेभी मरगये, जो इष्ट मित्रथे वेभी समाप्त होने वाले हैं अथवा अपने समान हैं आपभी लकड़ी टेककर उठने लगे और आखोंमें अंधेरी आई तौभी यह काया ऐसी निर्लज्ज है कि अपना मरण सुन चकित होजाती है ॥ ९ ॥

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं व्यालानां पशवस्तृणां-

कुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ॥
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता
सा नृणांयामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं
सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥ १० ॥

(भा० टी०) विधाताने हिंसा रहित विना प्रयत्न घर बैठे वायु भोजन सर्पों के लिये जीविका बनाई और पशु ऐसे बनाये जो तृणों को खाते हैं और भूमिपर सोते हैं और जिनकी बुद्धि संसाररूपी समुद्र लांघने को समर्थ है उन मनुष्यों की वृत्ति ऐसी बनाई की जिसके खोजमें सब गुण समाप्त होजायँ पर वह न सिद्धि होय ॥१०॥

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसार
विच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटु
र्धर्मोऽपि नोपार्जितः ॥ नारीपीनपयो
धरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं मातुः
केवल मेव यौवनवनच्छेदे कुठारा
वयम् ॥ ११ ॥

(भा० टी०) संसार छेदने के लिये ईश्वरके चरण कमलोंका विधिवत ध्यान न किया स्वर्गद्वार खुलनेके

लिये कोई निपुण धर्म भी संचय न किया और नारीके पुष्टपयोधर और दोनों जंघा स्वप्न में भी छाती से न लगाये केवल हम माता के यौवनरूपी वन काटने के हेतु कुल्हाड़े ही उत्पन्न हुये ॥ ११ ॥

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः॥ कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥ १२ ॥

(भा० टी०) विषयों को हमने नहीं भोगा किन्तु विषयों ने हमाराही भुगतान कर दिया, हमने तप न तपे पर तपही ने हमें तपा डाला. कालव्यतीत न हुआ और वयश हमारी बीत गई और तृष्णा पुरानी न हुई और हम पुराने होगये ॥ १२ ॥

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः सोढा दुःसहशीतवाततपनाः क्लेशान्नतप्तं तपः ॥ ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शंभो पदं तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वंचितम् ॥ १३ ॥

(भा० टी०) क्षमा तो हमने की परन्तु धर्म्म विचार के न की अर्थात् अशक्ततासे की, गृहसुख तो छोड़ा परन्तु संतोष पकड के न छोड़ा, शीतोष्ण वायुका दुःसह दुःख सहा पर तप न किया, धनका ध्यान करते रहे परन्तु संयमसे कल्याणदाता शिवके चरण न ध्याये हमने वे कर्म किये जिनको विचारवाले मुनियोंने वंचक ठग कहा है ॥ १३ ॥

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः॥ गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णै-का तरुणायते ॥ १४ ॥

(भा० टी०) मुंहके चमड़े सिकुड़ गये सिरके बाल धवल होगये और सब अंग शिथिल होगये पर एक तृष्णाही तरुण होती जाती है ॥ १४ ॥

येनैवाम्बरखंडेन संवीतो निशि चंद्रमाः। तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्य-मेतयोः ॥ १५ ॥

(भा० टी०) जिस आकाशके खण्ड को ओढकर रात्रि को चन्द्रमा व्यतीत करता है उसी को ओढकर दिन को सूर्य्य व्यतीत करता है देखो यह दोनों इस भ्रमणमें कैसी दुर्दशाको प्राप्त होते हैं पर कुछ फलभी

नहीं प्राप्त करते ॥ १५ ॥

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ॥ व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः स्वयं त्यक्त्वा ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥ १६ ॥

(भा० टी०) बहुकालपर्य्यन्त भोग किये हुये विषय अन्तमें अवश्य छूटेंगे फिर उनके वियोग होने में क्या संशय रहा जिसे यह मनुष्य पहिले आपही क्यों न त्याग दे क्योंकि जब वे आपसे छोड़ेंगे तो मन को बड़ा संताप देंगे और जो आप छोड़ देगा तो महासुख को प्राप्त होगा ॥ १६ ॥

तृष्णाधिकारमाह ।

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा परिष्वङ्गे तुङ्गे प्रसरतितरां सा परिणतिः ॥ जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपणास्तृषापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥ १७ ॥

(भा० टी०) जब विवेक के प्रकाश से शांतिका उदय होता है तब तृष्णाभी शांत होजाती है और उंचे विषय के संसर्गसे वही तृष्णा ऐसी फैलजाती है जिस के होते जरासे जीर्ण ऐश्वर्यके कठोर त्यागने में इंद्रभी असमर्थ होता है अर्थात् महान् पदवी वाला इंद्रभी तृष्णा को नहीं त्याग सकता ॥ १७ ॥

मदनविडंबनमाह ।

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छ विकलो व्रणी पूतिक्लिन्नः कृमिकुल शतैरावृततनुः ॥ क्षुधा क्षामो जीर्णः पिठरजकपालार्पितगलः शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥ १८ ॥

(भा० टी०) दुर्बल काना लंगड़ा और जिसके कान पूंछ कटे हैं और घाव हो रहा पीव बहती देहमें कीड़े पड़ेहैं भूखा बूढा जिसके फूटी हांडी का घेरा गलेमें फंस रहा है ऐसा कुत्ताभी कुत्तियों के पीछे संगम करने को चला जाता है तो देखो मृतकको भी कामदेव मारताहै सारांश यह की हृष्ट पुष्ट देहधारी फिर कामसे कैसे बचेंगे॥

विषयाणामधिकारमाह ।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं शय्या

च भूः परिजनो निजदेहमात्रम्॥ वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमलीनकन्था हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति॥ १६॥

(भा० टी०) निरस अन्न एक ही बेर भीख मांगके खाते हैं भूमिही पर सोते हैं कुटुंबभी उनका देहहीमात्र है पुराने वस्त्र सैकड़ों टुकडे कीसी गुदडी पहिने ऐसी दशामें प्राप्त हैं तौभी बडा आश्चर्य्य है कि उन्हे विषय बासना नहीं परित्याग करती॥ १९॥

रूपतिरस्कारमाह।

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम्॥ स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघनमहो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम्॥२०॥

(भा० टी०) स्त्रियोंके स्तन मांसके लोंदे हैं उन्हे स्वर्णकलशकी उपमा देते हैं मुख थूक खकारका गृह है उसे चन्द्रमाकी सम कहते हैं और टपकते हुए मूत्र से भीगी जांघोंको गजश्रेष्ठके शुंड समान कहते हैं तो देखो कि वारंवार निन्दायोग्य स्त्रियों का रूप है उसे

कवियों ने कैसा बढ़ाया है ॥ २० ॥

अजानन् महात्म्यं पततु शलभो दीपदहने स मीनोप्यज्ञानाद्बडिशयुत मश्नातु पिशितम् ॥ विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ।२१।

(भा० टी०) देखो पतंग दीपक की अग्नि में आय गिरता है पर यह नहीं जानता कि मैं नष्ट हूंगा मछली जो कंटिया का मांस निगलजाती है वह भी नहीं जानती कि इससे मेरे प्राण जायंगे पर हम लोगों को देखो कि जान बूझके दुखदाई विषयों की अभिलाषा नहीं छोड़ते यह महामोहकी महिमा अति कठिनहै।२१।

अथ दुर्जनमुद्दिश्याह ।

बिसमलमशनाय स्वादु पानाय तोयं शयनमवनिपृष्ठे वल्कले वाससी च ॥ नवधनमधुपानभ्रान्त सर्वेन्द्रियाणाम् विनय मनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥ २२ ॥

(भा० टी०) बहुतसे फल भोजन के लिये मधुर जल पीनेको पृथ्वी सोने को और वृक्षके बकले पहिरने के निमित्त हैं फिर थोड़ासा धनरूपी मदिरापान वाले जिनकी सब इन्द्रियां घूमती हैं ऐसे दुर्जनों का निरादर हम क्यों सहैं ॥ २२ ॥

मानितामुद्दिश्याह ।

विपुलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा ॥ इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः ॥ २३ ॥

(भा० टी०) कोई महात्मा ऐसे भये जिन्होंने जगत् को उत्पन्न किया कोई ऐसे हुए कि जिन्होंने धारण किया कोई ऐसे हुए जिन्होंने इसे जीतकर तुच्छ समुझ औरों को दे दिया और कोई ऐसे हैं कि चौदह भुवन को पालते हैं अब यहां देखो कि थोड़ेसे गांवकी ठकुराई पाकर जो अभिमानका ज्वर लोगोंको होता है वह क्या ॥ २३ ॥

निःस्पृहाणामधिकारमाह ।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभि-

माप्नोता: ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नःइत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरंयद्यस्मासुपराङ्मुखोऽसिवयमप्येकान्ततोनिःस्पृहाः ॥

(भा० टी०) तू राजा है तो मैं भी गुरुकी सेवाकर बुद्धिमान हो उच्चपदको प्राप्त हुआ हूं तू यदि धनसे प्रसिद्ध है तो हमारी विद्या का यश कविलोग देशान्तर में वर्णन कर रहे हैं फिर तू हमसे मुख फेरता है तो हम तुमसे अधिक निःस्पृह हैं ॥ २४ ॥

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतैर्भुवस्तस्या लाभे कइव बहु-मानः क्षितिभुजाम् ॥ तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो विषादेकर्त्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम् ॥ २५ ॥

(भा० टी०) सैकड़ों राजा इस पृथ्वीको अपनी २ मान चलेगए पर उनसे यह भोगी न गई तो इसके लाभ होनेसे राजाओंको क्या अभिमान करना चाहिये

अब तो उसके टुकडेका टुकडा फिर तिसका टुकडा उससेभी न्यून अंश पाके अपनेको भूपति मानते हैं तो जो बात सोच करनेके योग्य है उसमें मूर्खलोग देखो उलटे आनन्दही मानते हैं यह आश्चर्य है॥ २५ ॥

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं नन्वणुरङ्गीकृत्य स एव संयुगशतै राज्ञां गणैर्भुज्यते॥ तद्दद्युर्ददतेऽथवा न किमपिक्षुद्रा दरिद्रा भृशं धिक् धिक् धिक् तान्पुरुषाधमान्धनकणां वाञ्छन्ति तेभ्योऽपिये ॥ २६ ॥

(भा० टी०) यह भूमि एक मिट्टीका लोंदा पानी की रेखा से घिरा हुआहै पहिले आपही यह सम्पूर्ण छोटासा है तिसे राजा सैकडों लडाइयां लडलडकर अपना अपना भाग बांटके किसी प्रकारसे भोगते हैं ऐसे शूद्र औ दरिद्रको जो बडे दानी कहाते हैं अब भी देखें दान करते हैं या नहीं यों कह कह के उनसे धनके कणिका की वांछा करते हैं तिन अधम पुरुषों को धिक्कार है॥२६॥

दुर्भगसेवकस्य वाक्यमाह ।

न नटा न विटा न गायना न परद्रोह-

निबद्धबुद्धयः ॥ नृपसद्मनि नाम केवयं कुचभारानमिता न योषितः२७

(भा० टी०) न तो हम नट हैं न परस्त्रियों से लंपट हैं न गवैये हैं न झूठे लबार हैं और न बड़े२ स्तनवाली स्त्री हैं फिर हमको राजों के घर कौन पूछता है ॥२७॥

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेश हतये गता कालेनासौ विषयसुख सिद्धयै विषयिणाम् ॥ इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखा नहो कष्टं सापि प्रतिदिनमऽधोधः प्रविशति ॥ २८ ॥

(भा० टी०) पहिले जो विद्या पण्डितों के चित्तके क्लेश दूर करने के निमित्त थी फिर कुछ दिन पेरे वह विषयी लोगों के विषय सुखके सिद्धि होनेके लिये भई अर्थात् विद्यासे राजों को प्रसन्न करके धन आदि ले सुखभोग करना इस कामकी हुई इस समयमें राजोंको शास्त्र सुनने से विमुख देखकर प्रतिदिन वह विद्या अधोगतिको प्राप्त होती जाती है यह बड़ा कष्टहै ॥ २८ ॥

साहंकारं पुरुषमुद्दिश्याह।

स जातः कोप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलङ्कारविषये ॥ नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुनानमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥ २९ ॥

(भा० टी०) पहिले तो ऐसे पुरुष हुये हैं कि जिनके उज्ज्वलमस्तककी माला बनाकर शिवजीने धारण किया कि जिससे कंठका भूषण हो अब देखो अपने प्राण पोषण करनेवाले थोडेसे मनुष्यों से प्रतिष्ठा पाकर कैसे अभिमानके ज्वरसे भारी हो रहे हैं ॥ २९ ॥

अर्थानामीशिषेत्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदित्थं शूरस्त्वं वादिदर्प्पज्वरशमनविधावक्षयंपाटवंनः॥ सेवन्ते त्वां धनाढ्या मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामा मय्यप्यास्थानचेत्तत्त्वयिममसुतरामेषराजन्गतोस्मि ॥ ३० ॥

(भा० टी०) तुम धनके कोशके ईश्वर हो तो हम

भी विद्या के कोशके ईश्वर हैं तुम युद्ध करने में वीर हो तौ हमभी शास्त्रार्थ करनेवाले वादी प्रतिवादियों के अभिमान का ज्वर तोडनेमें कुशल हैं तुम्हें बडे लोग धनान्ध अथवा धन चाहनेवाले आशाग्रसित सेवन करते हैं तो हमैंभी अपने बुद्धि का अज्ञान दूर करने को शास्त्र सुनने की इच्छावाले सेवते हैं तो हे राजन् ! यदि हमारे विषय तुम्हारी श्रद्धा नहीं है तो हमारी भी श्रद्धा तुम में नहीं है लो अब हम जाते हैं ॥ ३० ॥

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदव-लिप्तं मम मनः॥यदा किंचित् किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ३१

(भा० टी०) जब मैं कुछ थोडा सा जानता था तब हाथी के समान मुझे मद था और मेरे मन में यह था कि मैं सर्वज्ञ हूं और जब मैं पंडितों के सकाश से कुछ कुछ जाना तब मैंने जाना कि मैं मूर्ख हूं और मेरा मद ऐसा नष्ट हो गया जैसा ज्वर ॥ ३१ ॥

निर्ममतास्वरूपमाह ॥

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोग-

सुभगोभ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिर-
मिह संसारसरणौ ॥ इदानी स्वःसिन्धो-
स्तटभुवि समाक्रन्दनगिरः सुतारैः
फूत्कारैः शिवशिव शिवेतिप्रतनुमः ३२

(भा० टी०) भूषण आदिसे शोभित जो स्त्री उनके भोगने में सुभग (योग्य) यौवन (समय) तो बीतगया और चिरकालतक इस संसारके मार्गमें भ्रमते २ हम थकगये अबतो श्रीगंगाजी के तटकी भूमिपर उक्त स्त्रियों की निंदा करते हुये हम शिव३यह जप करेंगे ॥ ३२ ॥

मानेम्लायिमीखण्डिते च वसुनिव्यर्थं
प्रयातेऽर्थिनिक्षीणे बन्धुजने गते परि-
जने नष्टे शनैर्यौवने ॥ युक्तं केवलमेत
देव सुधियां यज्जन्हुकन्यापयः पूत
ग्रावगिरीन्द्र कन्दरदरीकुञ्जे निवासः
क्वचित् ॥ ३३ ॥

(भा० टी०) अब प्रतिष्ठा भंग हुई द्रव्य नाश होगया यांचक लोग आयर विमुख फिरजाने लगे भ्राता स्त्री पुत्र और सम्बन्धी आदि भ्रष्ट होगये उस समय बुद्धिमान्

पुरुषों को उचित है कि जिस पर्वतके पाषाण गंगाजल से पवित्र हैं उसकी कंदराके समीप दरी और कुंजमें कहीं निवास करैं ॥ ३३ ॥

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदय क्लेशकलितम् ॥ प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगुणो विमुक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते ३४

(भा० टी०) हे मन ! तू पराये चित्तमें प्रसन्न करने को क्या प्रसाद लेनेके हेतु क्लेशसे मलीन होता हुआ घुसता है तू सर्व संकल्प अर्थात् तृष्णा छोड़कर अपने हीमें प्रसन्न होकर चिन्तामणि कैसे गुण प्रगट करेगा अर्थात् शांति संतोषादि गुण ग्रहण करेगा तो क्या तेरी अभिलाषा पूरी न होगी ॥ ३४ ॥

अथ भोग पद्धतिः ।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ॥ शास्त्रे वाद भयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं

सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्य मेवाभयं ॥ ३५ ॥

(भा० टी०) भोगमें रोगका भय सुख बढनेमें उसके क्षयका भय, अधिक धन होने में राजभय, मौन होने में दीनताका भय, संग्राम जीतने में शस्त्रभय, रूप में वृद्धअवस्थाका भय, शास्त्रसे मान बढने में अपमानका भय, सद्गुण में दुर्जनका भय, और शरीरमें मृत्युका भय यों सर्वत्र भयकही स्थान देखपड़ते हैं केवल वैराग्यही निर्भय ठौर है ॥ ३५ ॥

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्र पयसां कृतं किन्नास्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम् ॥ यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिःशंकमनसां कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि ॥ ३६ ॥

(भा० टी०) जैसे कमलके पत्रपर जलके बुन्द चंचल रहते हैं वैसेही इन चंचल प्राणों के हेतु विवेक त्यागकर हमने क्यों उद्यम न किया क्योंकि जिससे धनके मदसे मदान्ध लोगोंके निकट अपना गुण गान करना यह पाप निर्लज्ज होके किया ॥ ३६ ॥

भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्तेबन्दिनस्ताःकथाः सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः॥ ३७॥

(भा० टी०) पहिले यहां कैसी सुन्दर नगरी थी उसका राजा कैसा उत्तम था और राज्य उसका कैसा दूरतक था उसके निकट सभा कैसी होती थी और चन्द्रमुखी स्त्रियां कैसी शोभायमान थीं और राजाके पुत्रोंका समूह कैसा प्रबल था कैसे वे बन्दीगण थे और कैसी अच्छी २ कथा कहते थे अब वे सब जिसकालके वश होकर लुप्त होगये उस बली कालको नमस्कार है।३७।

पुनःकाममुद्दिश्याह ।

वयंयेभ्योजाताश्चिरपरिगताएवखलुते समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः॥ इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतनाद्गतास्तुल्यावस्थां सिक-

तिलनदीतीरतरुभिः ॥ ३८ ॥

(भा० टी०) जिनके संग हम जन्मे थे उनको तो गये बहुत दिन बीते फिर जिन के साथ हम बड़े हुए वेभी स्मरण पदमें गये अर्थात् मरे अब हमभी दिन दिन गिरते देख पड़ते हैं बालुका नदी तटके वृक्षके तुल्य दशा को प्राप्त हो रहे हैं ॥ ३८ ॥

यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र चान्ते न चैकः ॥ इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन् द्वाविवाक्षौ कालः काल्या सह बहुकलः क्रीडति प्राणसारैः॥३९॥

(भा० टी०) जिस घरमें अनेक थे वहां एक दृष्टि पड़ता है और जहां एक था वहां अनेक देखपड़तेहैं फिर एकही रह गया तो देखो रात और दिनके पासे लुढा २ के इस संसार रूपी चोपड़ में प्राणियों को गोटी बनाके काल पुरुष अपनी कालरात्रि शक्ति से खेल रहा है।३९।

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं गुणोदर्कान् दारानुत परिचरामः सविनयम् ॥ पिबामः शास्त्रौघान्

द्रुतविविधकाव्यामृतरसान्न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने ॥ ४० ॥

(भा० टी०) तप करते हुए गंगातट पर बसे अथवा गुणवान् स्त्रियों के संग प्रेम सहित विचरें वा वेदान्त शास्त्र समूह और अनेक काव्यामृतरस पियें भावार्थ इस निमेषमात्र आयुष्यवाले देहको देखकर हम नहीं जान सक्ते कि क्या करें ॥ ४० ॥

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ॥ किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः संप्राप्स्यन्ते जरठहरिणाः शृंगकंडूविनोदं ॥ ४१ ॥

(भा० टी०) जिस समय हम गंगाके तट हिमांचल की शिलापर आसनलगा पद्मासन बांधे बैठेंगे और ब्रह्मज्ञानके अभ्यासमें विधिपूर्वक अभ्यासमें विधिपूर्वक आंख मूंद योगनिद्रामें प्राप्त होंगे, देखें हमारे ऐसे सुदिन कब होते हैं जहां निःशंक हो बूढे २ हरिणा हमारे देह में रगड़के अपने शृंगकी खुजलाहट मिटावेंगे ॥ ४१ ॥

स्फुरत्स्फार ज्योत्स्ना धवलि ततले

क्वापिपुलिने सुखासीनाःशान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः ॥ भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिवशिवेत्यार्तवचसा कदास्यामानन्दोद्गतबहुलबाष्पप्लुतदृशा ४२।

(भा० टी०) जहां प्रकाशित फैली चांदनीसे निर्मल स्थल है ऐसे गंगातटमें सुखसे बैठे रहैं जब सब ध्वनि बन्दहो तब रात्रिमें शिव ३ आर्तस्वरसे कहते हुए संसार के दुःख से व्याकुलहो और आनन्दके आंसुओं से पूर्ण नेत्र हो रहे हैं ऐसे हम कब होंगे ॥ ४२ ॥

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुर सरिद्गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः॥ सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदम दैन्यव्रतमिदम् कियद्वावक्ष्यामोवट विटप एवास्तु दयिता ॥ ४३ ॥

(भा० टी०) महादेवही एक देवगंगाही नदी एक गुहाही घर दिशाही वस्त्र कालही मित्र किसीसे दीन न होना यही व्रत और कहांतक कहैं बटका वृक्षही हमारी वल्लभा हो ॥ ४३ ॥

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः
क्षितिधरं महीध्रादुत्तुंगादवनिमवने
श्चापि जलधिम् ॥ अधो गंगा सेयं
पदमुपगता स्तोकमथवा विवेकभ्रष्टानां
भवति विनिपातः शतमुखः ॥ ४४ ॥

(भा० टी०) जो विवेकसे भ्रष्ट होतेहैं उनको नीचे पदपर गिरना सैकडों प्रकार से होताहै देखो यह श्रीगंगा स्वर्गसे तो शिवजीके शिरपरगिरी और शिरसे हिमाचल पर्वतपर और ऊंचे पर्वतसे पृथ्वीपर और पृथ्वीसेसमुद्र में गिरी ॥ ४४ ॥

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णा
तरङ्गाकुला रागग्राहवती वितर्कविहगा
धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥ मोहावर्त्तसुदुस्तराऽ
तिगहना प्रोतुङ्गचिन्तातटी तस्याः
पारं गता विशुद्ध मनसो नन्दन्ति
योगीश्वरा ॥ ४५ ॥

(भा० टी०) आशा नाम एक नदी है मनोरथका जल उसमें भरा है तृष्णारूपी तरंगों से पूर्ण है प्रीतही

उसमें मगर हैं नानाविधिकी तर्कही उसमें पक्षी हैं धैर्य रूपी वृक्षको ढाहनेवाली है मोहरूपी भौंरें उसमें पड़ेहैं इससे बड़ी दुस्तर और कठिन हो रही है बड़ी चिन्ताही उसके तट हैं उससे पार होकर बड़े शुद्ध मननशील महात्मा योगीश्वर ही आनन्द पाते हैं ॥ ४५ ॥

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृङ्नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मा गतो वा ॥ योऽयं धत्ते विषयकरिणी गाढगूढाभिमानः क्षीवस्यान्तः करण करिणः संयमालानलीलां ॥ ४६ ॥

(भा० टी०) जबसे यह संसार प्रवृत्त हुआ है आज तक हेभाई ! हम त्रिभुवनमें ढूंढते फिरतेहैं पर ऐसा पुरुष देखने और सुननेमें न आया जो विषयरूपी हथिनी में पैदा हुआ है अत्यन्त अहंकार जिसको ऐसे अन्तः-करण रूपी उन्मत्त हाथीको रोककर वशमें रक्खे अर्थात् विषयों में फंसा मन वशमें नहीं हो सक्ता ॥ ४६ ॥

सांप्रतं निर्वेदतायाः स्वरूपमाह ।

ये वर्द्धंते धनपतिपुरःप्रार्थनादुःखभाजो ये चाल्पत्वं दधति विषयाक्षेपपर्यस्त-

बुद्धेः ॥ तेषामन्तःस्फुरितहसितं वासराणां स्मरेयं ध्यानच्छेदेशिखरिकुहर ग्रावशय्यानिषण्णाः ॥ ४७ ॥

(भा० टी०) जो दिन धनवानों के निकट प्रार्थना का दुःख सहनेवालों को बढ़जाते हैं और जो विषयों के नष्ट होने से विपरीत बुद्धिवालों को छोटे प्रतीत होते हैं उन दिनों को हम अन्तःकरणमें हँसकर ध्यान से विश्रामको पाकर पर्वतकी कंदरामें पत्थरकी चट्टानरूपी शय्यापर बैठे हुये स्मरण करेंगे अर्थात् विरक्त होंगे ॥४७॥

विद्या नाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता ॥ आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेपि नालिङ्गिताः कालोयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः ॥ ४८ ॥

(भा० टी०) निष्कलंक विद्या नहीं पढ़ी धन न कमाया एकाग्र चित्त होके माता पिता की सेवा भी न की और चंचल और बड़े नेत्रवाली स्त्रियों का स्वप्न मेंभी गलेसे न लगाया पराये ग्रासका लोभ करते२ काकके

समान सब समय योंहीं बिताया ॥ ४८ ॥

विदीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामावधिगतीः ॥ वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणैस्त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैकशरणाः ॥ ४६ ॥

(भा० टी०) सर्वस्व नष्ट होनेपर बड़ी करुणा से पूर्ण हृदय वाले और संसार में जितनी वस्तु हैं उनसब को गुणोंसे शून्य (नाशवान) स्मरण करते और शिवके चरणमें लगे हुए चित्तको अपना रक्षक समझ शरद ऋतुकी चांदनी में किसी पवित्र वनमें बैठे हुये हम कब रात्रि को व्यतीत करेंगे अर्थात् कब यह संसार छूटेगा ॥ ४९ ॥

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या सम इह परितोषो निर्विशेषावशेषः ॥ स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः ॥ ५० ॥

(भा० टी०) हम वृक्ष के बकले पहिर के संतुष्ट हैं तुम धनसे संतुष्ट हो जब हमारी तुम्हारी तुष्टी सम ठहरी तब संतोष निर्विशेष हुआ अर्थात् भेद न रहा दरिद्री वह होता है जिसे बड़ी तृष्णा है जब मन संतोषसे पूर्ण हुआ फिर कौन दरिद्री और कौन धनवान है ॥ ५० ॥

यदेतत्स्वाच्छन्द्यं विहरणमकार्पण्यम-
शनं सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रत
फलम् ॥ मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि
चिरस्यापि विमृशन्न जाने कस्यैषा
परिणतिरुदारस्य तपसः ॥ ५१ ॥

(भा० टी०) स्वाधीन विचरना, बिना यांचे भोजन करना सहाय करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंके संग रहना ऐसा शास्त्र कहना वा सुनना कि जिस का उपशम रूपी व्रतही फल हो और यदि मन बाह्य पदार्थों में हो तो विचार करता हुआ मन्दमन्द गमन करे यह सब प्राप्त होना हम नहीं जानते कि किस प्राचीन और बड़े तपका फल है ॥ ५१ ॥

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं
भैक्षमक्षय्यमन्नं विस्तीर्णं वस्त्रमाशा-

सुदशाकममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥ येषां निःसंगताङ्गीकरणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषिणस्ते धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्मनिर्मूलयन्ति ॥ ५२ ॥

(भा० टी०) अपने आत्मामें संतोषवाले उन पुरुषों को धन्य है कि जिनका हाथही पात्र है और जो भ्रमण करके भिक्षाका अन्न खाते हैं और जिनका निर्मल दिशारूपी दशावाला आकाश वस्त्र है और छोटीसी पृथ्वी शय्या है और जो परिणाममें असंग (अकेले) रहनेको स्वीकार करते हैं और जिन्होंने दीनता के समूहको भली प्रकार छोड़ दिया है और जो कर्मकी जड़को उखाड़ देतेहैं ॥ ५२ ॥

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो वयं तु स्थूलेच्छा महति च पदे बद्धमनसः ॥ जरा देहं मृत्युर्हरति सकलं जीवितमिदं सखे नान्यच्छ्रेयो जगतिविदुषोऽन्यत्र तपसः ॥ ५३ ॥

(भा० टी०) स्वामीकी सेवाकरनी बडी कठिन है और राजा घोड़े के समान चंचलचित्त होता है हम तो मोटी इच्छावाले हैं बड़े पदमें हमारा मन बंधा (लगा) हुआ है और देहकी वृद्ध अवस्था है संपूर्ण जीने को मृत्यु हर लेती है इससे हेमित्र ! ज्ञानवान् को तपसे अन्य कल्याण कहीं नहीं है ॥ ५३ ॥

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदा-मिनीचञ्चला आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपट लीलीनाम्बुवद्भंगुरम् ॥ लोला यौवन लालना तनुभृतामित्याकलय्यद्रुतं योगेधैर्य समाधि सिद्धिसुलभे बुद्धिं विधद्ध्वं बुधाः ॥ ५४ ॥

(भा० टी०) विस्तृतमेघमें चमकती हुई बिजुली के समान देहधारियोंका भोग चंचल है वायुसे छिन्न भिन्न मेघजलकी सदृश आयुष्य नाशवान् है यौवनका उमंग भी स्थिर नहीं है हे पण्डितो ! ऐसा समझकर धैर्य्य समाधि की सिद्धि से सुलभ जोग योग है तिसमें बुद्धि धारण करो ॥ ५४ ॥

पुण्ये ग्रामे वने वा महातिसितपटच्छन्न

पालीं कपालीमादाय न्यायगर्भद्विज मुखहुतभुग्भूमधूम्रोपकण्ठम् ॥ द्वारं द्वारंप्रवृत्तोवरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्तो मानी प्राणी सधन्योन पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषुदीनः ॥ ५५ ॥

(भा० टी०) पवित्र ग्राम अथवा पवित्र बड़े बनमें उज्ज्वल वस्त्र से ढकाहुआ ठीकरा लेकर जिनकी चौखट न्यायपूर्वक ब्राह्मणों की होमी हुई अग्निके धूमसे मलीन हो उनके द्वारपर क्षुधासे पीड़ित पेटरूपी कन्दरा भरने को नित्य प्रति भ्रमण करता हुआ मानी पुरुष अच्छा है पर समान कुलवालोंमें दीन होना अच्छा नहीं ॥ ५५ ॥

चाण्डालःकिमयं द्विजातिरथवा शूद्रो ऽथ किं तापसः किंवा तत्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरःकोऽपि किम् ॥ इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्य माणा जनैर्नक्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥ ५६ ॥

(भा० टी०) यह चंडाल है, वा ब्राह्मण, शद्र, तपस्वी

अथवा तत्त्वविवेक में चतुर बुद्धिमान् कोई योगीश्वर है ऐसे संदिग्ध अनेक प्रकार के वक्ताजनों के विकल्पों करके मार्ग में संभाषण करने पर भी योगी लोग राग द्वेष नहीं करते किन्तु स्वच्छन्द अपने मार्ग चले जाते हैं ५६

सखे धन्याः केचित् त्रुटितभवबन्धव्य-
तिकरा वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषया
शीविगताः ॥ शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधव-
लगगनाभोगसुभगां नयन्ते ये रात्रिं
सुकृतचयचित्तैकशरणाः ॥ ५७ ॥

(भा० टी०) हे मित्र! उन पुरुषोंको धन्य है जो वन में बैठे हुये शरदऋतुकी चांदनी से श्वेत, आकाश के विस्तारसे सुन्दर और मनोहर रात्रिको इस प्रकार बिताते हैं कि पुण्यका समूह जिनके मनमें शरण है और जिन्होंने भवबंधनके क्षोभ को तोड़दिया है और जिनके मनमें से भयानक कठोर सर्परूपी विषय निकलगयाहै ॥ ५७ ॥

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थगहनादायासका
दाश्रयाच्छ्रेयोमार्गमशेषदुःखशमन
व्यापारदक्षं क्षणात् ॥ शान्तं भावमु-
पैहि संत्यज निजां कल्लोललोलां

गतिं मा भूयो भज भंगुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना ॥ ५८ ॥

(भा० टी०) हे चित्त ! बडे परिश्रमसे प्राप्त हुये और दुःखदाई आश्रयवाले इन्द्रियों के विषयरूपी वनसे विश्राम ले सकल दुःखध्वंस करने के व्यापारमें समर्थ कल्याण मार्गको शीघ्र प्राप्त हो, शांतभाव ग्रहण कर तरंगसी अपनी चंचलगती छोड़ दे इस नाशवान् संसारी इच्छा को फिर सेवन मत कर अब तू आपही प्रसन्नरूप हो ॥५८॥

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरुष्वाधुना भूशय्यानववल्कलैरकरगौरुत्तिष्ठ यामो वनम् ॥ क्षुद्राणाम विवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा चित्तव्याध्यविवेकविह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥ ५९ ॥

(भा० टी०) अब हम बनमें जातेहैं हे बुद्धि हे प्रणयिनी! प्रीति करनेवाली;तूभी उठ और पवित्र फलमूलसे अब अपना पोषण कर, बनी बनाई भूमि शय्या और बने बनाये नवीन वल्कलके वस्त्रोंसे निर्वाह कर जिस बनमें अविवेक से जिनका मूढ मन है और जो क्षुद्र है

और धनरूपी व्याधि जनित अविचारसे जिनकी बुद्धि विह्वल है उनका नामभी सुनाई नहीं देता है ॥ ५९ ॥

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्ध चूड़ामणौ चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवा मासङ्गमङ्गीकुरु ॥ को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥ ६० ॥

(भा० टी०) हे चित्त ! मोह को छोड जिनके शीश में अर्द्ध चंद्र विराजमान है उन शिवजी से प्रीति कर और गंगातट के वृक्षों के नीचे विश्राम ले देखो तरंग, पानी के बुलबुले, बिजुली की चमक, स्त्री. अग्निकी ज्वाला की शिखा, सर्प, और नदीके प्रवाह में स्थिर रहनेका क्या विश्वास अर्थात् इन सबके समान सातवीं स्त्रीभी चंचल है तिनके विलासमें मत भूल ॥ ६० ॥

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः पृष्ठे लीलावशपरिणति श्चामर ग्राहिणीनाम् ॥ यद्यस्त्येवं कुरु भवर-

सास्वादने लंपटत्वं नोचेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥ ६१ ॥

(भा० टी०) सन्मुख प्रवीण गवैये गाते हों दहिने बांऐं दक्षिण देश के सरस कविलोग काव्य सुनाते हों और पीछे चंवर डोलानेवाली सुंदर स्त्रियोंके कंकणकी मधुर झनकार होती हो जो ऐसी सामग्री तुझे प्राप्त हो तो संसारके रसका स्वाद लेने में लिपट, नहीं तो हेचित्त स्थिर समाधिमें प्रवेश कर ॥ ६१ ॥

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात् क्षणभंगुरात्कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम्॥न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनमण्डलं शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणिमेखलम् ॥ ६२ ॥

(भा० टी०) हे पण्डितो स्त्रियों के संगसे पैदा हुये क्षणिक नश्वर सुखसे विश्राम लो (हटो) और मैत्री करुणा और प्रज्ञारूपी वधू से संगम करो नर्कमें जब ताड़ना होगी उस समय हारों से भूषित स्त्रियों के स्तन मंडल और क्षुद्रघंटिका से शोभित कटि सहायता न करेंगी ॥ ६२ ॥

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधन हरणे
संयमः सत्यवाक्यं काले शक्त्या प्रदानं
युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ॥
तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयः
सर्वभूतानुकम्पा सामान्यःसर्वशास्त्रे-
ष्वनुपहतविधिश्रेयसामेषपन्थाः॥ ६३॥

(भा० टी०) हे मन तिरस्कारके अयोग्य मार्ग से जिनका कल्याण है ऐसे मुमुक्षु पुरुषों का यही मार्ग है कि हिंसा का त्याग और पराये धन हरने से विराग (हटना) सत्य बोलना और समय पर शक्तिके अनुसार देना और परस्त्री की जहां चर्चा हो वहां मूक रहना और सब प्राणियों पर दया रखनी और तृष्णाके स्रोत का त्याग करना और सब शास्त्रों को समान समझना ६३

मातर्लक्ष्मि भजस्वकंचिदपरं मत्कां-
क्षिणी मास्म भूर्भोगेभ्यः स्पृहयालवो
नहि वयं का निःस्पृहाणामसि ॥ सद्यः
स्यूतपलाश पत्रपुटिकापात्रे पवित्रीकृते
भिक्षासक्तुभिरेव संप्रति वयं वृत्तिं

समीहामहे ॥ ६४ ॥

(भा० टी०) हे लक्ष्मी माता ! अब तू अन्य किसी पुरुष का सेवन कर हमारी आकांक्षा मत कर हम विषय भोगके इच्छुक नहीं निस्पृहा विरक्तों के समीप तू तुच्छ है क्योंकि अब हम हरे पलाश पत्रके पवित्र दोने में भिक्षा के सत्तूसे अपने जीवनवृत्तिकी इच्छा रखते हैं ६४

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरा-
वयोः ॥ किं जातमधुना मित्र येन
यूयं वयं वयम् ॥ ६५ ॥

(भा० टी०) जो तुम हो सो हमहैं और जो हम हैं सो तुम हो परस्पर कुछ भेद नहीं है ऐसीही बुद्धि हमारी प्रथम थी अब क्या नई बात हुई कि जिससे तुम तुम्हीं हो हम हमी हैं ॥ ६५ ॥

बाले लीलामुकुलितममी मन्थरा
दृष्टिपाताः किं क्षिप्यंते विरम विरम
व्यर्थ एष श्रमस्ते ॥ संप्रत्यन्ये वय-
मुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते क्षीणो
मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोक-

याम: ॥ ६६ ॥

(भा० टी०) हे बाला स्त्री ! लीला से मींच२ कर मन्द मन्द दृष्टिरूप बाण हमारे ऊपर क्यों फेंकती है अर्थात् हमारी तरफ क्यों देखतीहै विराम कर२(हट हट) तेरा यह परिश्रम निष्फल है क्योंकि अब हम और हैं और वे नहीं अब हमारी बाल्य अवस्था (मूर्खता) गई और वनमें रहनेका हमारा निश्चय है हमारा मोह नष्ट होगया है और जगत के जालको तृणके समान देखते हैं ॥ ६६ ॥

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरद-
लप्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेत
मनया ॥ गतो मोहोऽस्माकं स्मर-
कुसुमबाणव्यतिकर ज्वलज्ज्वाला
शान्ता तदपि न वराकी विरमति ।६७।

(भा० टी०) यह बाला स्त्री मेरे ऊपर बार बार नीलकमलके दलकी कांतिसेभी सुन्दर नेत्रको फेंकती है इसने क्या समझा है अब तो हमारा मोह गया और कामदेवके पुष्परूपी बाणोंके क्षोभसे पैदा हुई जलती अग्निकी ज्वाला शांति होगईहै तोभी यह वराकी (मूर्खिणी) नहीं हटती ॥ ६७ ॥

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं किंवा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये ॥ किं तूद्भ्रान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपांकुरच्छायाचंचलमाकलय्य सकलं संतो वनांतं गताः ॥ ६८ ॥

(भा० टी०) संतजनोंके निवासके लिये क्या महल न था और सुननेके योग्य क्या उत्तम२ गाना न था और क्या अधिक प्रीति करनेवाला प्राणप्यारी स्त्रीका सुख न था अर्थात् यह सब था तोभी संतजन इस जीवलोक (जगत) को हिलतेहुये दीपककी छायामें भ्रमते मूर्ख पतंग के समान चंचल (मरणा के उन्मुख) देखकर बनमें चलेगये ॥ ६८ ॥

किं कन्दाः कन्दरेभ्यःप्रलयमुपगता- निर्झरावागिरिभ्यः प्रध्वस्तावातरुभ्यः सरसफल भृतावल्कलेभ्यश्च शाखाः वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमुपगतप्र श्रयाणां खलानां दुःखोपात्तात्पवित्त

स्मयवशपवनानर्तितभ्रूलतानि ॥६९॥

(भा० टी०) पहाडों की कंदराओं से कन्दमूल और पर्वतोंमें से पानी के झरने क्या नष्ट होगए वल फलवाले वृक्षों मेंसे रससहित फलवाली शाखा क्या ध्वस्त हो गई जो अनम्र खल जिन्होंने बड़े कष्टसे कुछ धन उत्पन्न किया उसके गर्वरूपी वायुसे भौंहरूपी लता जिनकी नाचती हैं उनका मुख देखते हैं अर्थात् उनके मुख के दर्शन को त्याग कर सत्पुरुष पहाडोंमें क्यों न बसैं ॥ ६९ ॥

गङ्गातरङ्ग कणशीकरशीतलानि विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ॥
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः ७०

(भा० टी०) गङ्गाके तरङ्गोंके जलकी बिन्दुओंके छींटोंसे जो शीतल होरहे हैं जहां विद्याधर ठौर२ सुंदर पत्थरोंकी चट्टानों पर बैठे हैं ऐसे हिमाचलके स्थानोंका क्या प्रलय होगया है जो अपमान सहकेभी पराये दिये ग्रास में मनुष्य रत रहते हैं ॥ ७० ॥

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निनिहतः समुद्राः शुष्यंति प्रचुरनि-

करग्राहनिलयाः ॥ धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता शरीरेका वार्त्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥ ७१ ॥

(भा० टी०) प्रलय कालकी अग्निका मारा जब श्रीमान् सुमेरु पर्वत गिर पडता है और बंदर२ मगर और ग्राहोंके स्थान समुद्र जब सूख जाते हैं और पर्वतोंके पगसे दबी हुई पृथ्वीभी नाश होजाती है तब हाथीके बच्चोंके कानके कोणके समान चंचल मनुष्य के शरीर की क्या गणना है अर्थात् यह तो अवश्य नाश होगा ॥ ७१ ॥

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ॥ कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥ ७२ ॥ ×

(भा० टी०) असंग इच्छा रहित और शान्तरूप हाथहीका पात्र बनाये दिगंबर और कर्मोंके जड़ उखाडनें में समर्थ है शिव ऐसे हम कब होंगे ॥ ७२ ॥

प्राप्ताःश्रियः सकलकामदुघास्ततः किं दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततःकिम् ॥ सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततःकिं

कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥ ७३ ॥

(भा० टी०) इन नश्वर शरीरधारियोंने सब कामनाओं की दुहने वाली लक्ष्मी पाई तो क्या, शत्रुओंके सिर पर पगदिया तो क्या धनसे मित्रोंका सन्मान किया तो क्या फिर इस देहसे कल्पभर जिये तो क्या अर्थात् परलोक न बनाया तो कुछ न किया ॥ ७३ ॥

जीर्णा कंथा ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततःकिं एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततःकिं॥भक्तं भुक्तं ततःकिं कदशनमथवा वासरांते ततः किं व्यक्तज्योतिर्नवांतर्मथितभव भयं वैभवंवाततः किम् ॥ ७४ ॥

(भा० टी०) पुरानी गुदडी धारण की तो क्या उज्ज्वल निर्मल वस्त्र वा पीतांबर धारण किया तो क्यां एकही स्त्री पास रही तो क्या अथवा घोडे हाथी सहित करोड स्त्रिया रही तो क्या अच्छे व्यञ्जन भोजन किये वा कुत्सित अन्न सायंकालको खाये तो क्या जिससे भव भय नष्ट होजाय ऐसी ब्रह्मकी ज्योति हृदयमें न

जानी तो बडा विभव पायाही तो क्या ॥ ७४ ॥

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः ॥ संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता वैराग्यमस्ति किमतःपरमार्थनीयम् ॥ ॥ ७५ ॥

(भा० टी०) सदाशिवकी भक्ति हो जन्म मरणका भय हृदय में न हो बन्धुवर्गमें स्नेह न हो कामदेव का विकार मनसे दूर हो संसर्गदोषसे छूटे निर्जन बनमें बैठे हों इससे अधिक और क्या वैराग्य है जो ईश्वरसे मांगने योग्य है अर्थात् यही वैराग्य है ॥ ७५ ॥

तस्मादनन्तमजरंपरमं विकासि तद्ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः ॥ यस्यानुषंगिण इमे भुवनाधिपत्यभोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति ॥ ७६ ॥

(भा० टी०) जिसब्रह्मके लेशमात्र आनन्द पानेवालों के निकट त्रिभुवनके राजाओंका भोग विलास मूर्खोंके योग्य ठहरताहै अतएव उसी अनन्त अजर और सर्वोत्तम शोकरहित ब्रह्मकी चिंतवन करो इन विकल्पों से

क्या फल है अर्थात् देहादि अहंभाव त्यागि के ब्रह्मकी चिन्ता करो ॥ ७६ ॥

पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस चापलेन भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीतं तद्ब्रह्म नस्मरसि निर्वृतिमेषि येन॥७७॥

(भा० टी०) हे चित्त! तू अपनी चंचलतासे पाताल में प्रवेश करता है आकाश उलंघकर ऊपर जाता है और सब दिशाओं में भ्रमण करता है पर भूलेभी कदाचित् अपने हृदय में स्थित विमलब्रह्म का नहीं स्मरण करता है कि जिसके स्मरणसे परमानन्द को प्राप्त हो॥७७

रात्रिःसैव पुनः स एवदिवसोमत्वाबुधा जन्तवो धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः ॥ व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरेवंविधेनामुना संसारेण कदर्थिताः कथमहो मोहान्न लज्जामहे ॥ ७८ ॥

(भा० टी०) वही रात और दिन नित्य होते हैं यह

जानकेभी बुद्धिमान् मनुष्य उद्योग करते हुये उसी प्रति दिन की रीतिसे यथार्थ तिस२कार्यका प्रारंभ करके बारंबार कहे और भोगेहुये हैं विषय जिनमें ऐसे२व्यापारों से जहांतहां दौडते हैं इस पूर्वोक्त प्रकारके इस संसार से निंदित अर्थवालेभी हम मोहसे लज्जाको प्राप्त नहीं होते ॥ ७८ ॥

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता वितानं चाकाशं व्यजनम-नुकूलोऽयमनिलः॥ स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासङ्गमुदितः सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥ ७९ ॥

(भा० टी०)भूमिही जिसकी सुन्दर शय्या है भुजाही सिरहाना (तकिया) आकाशही चांदोवा अनुकूल वायुही पंखा और चंद्रमाही प्रकाशमान दीपक है इन सामग्रियों से विरक्तारूपी स्त्रीके संग आनन्दसे शान्त पुरुष सुखपूर्वक बडे ऐश्वर्यमान राजाओंके समान सुख से शयन करता है ॥ ७९ ॥

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मि-न्महाशासने तल्लब्ध्वासनवस्त्रमान-

घटने भोगे रतिं मा कृथाः॥भोगःकोपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते यत्स्वादाद्विरसाभवन्तिविषया स्त्रैलोक्यराज्यादयः ॥ ८० ॥

(भा० टी०) हे जीव ! जिस परब्रह्म ज्ञानके आगे त्रैलोक्य का राज्य फीका होजाता है उसे प्राप्त होकर भोजन वस्त्र और मानके लिये भोगोंमें प्रीति मत कर वही एक भोग सबसे श्रेष्ट और नित्य उदित और प्रकाशित है जिसके स्वाद के सन्मुख त्रैलोक्य राज्य आदि सब ऐश्वर्य निरस होजाते हैं ॥ ८० ॥

किं वेदैः स्मृतिभिःपुराणपठनै शास्त्रैर्महाविस्तरैः स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः॥ मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥ ८१ ॥

(भा० टी०) श्रुति स्मृति पुराण और बडे विस्तार पर्वक शास्त्रों के पढने से क्या फल है और स्वर्गरूपी

ग्राममें कुटी बनाके रहनाही जिसका फल है ऐसे कर्म-कांडकी कर्त्तव्यताके विभ्रमसे क्या है संसार बंधनके दुःख रचनाके विध्वंस करने के हेतु प्रलयाग्निकी सदृश ब्रह्मानंद पदमें प्रवेशके एक उद्योगके बिना और सब शेष बनिज (वैश्योंका) व्यापार है ॥ ८१ ॥

आयुःकल्लोललोलं कतिपयदिवस-स्थायिनी यौवन श्रीरर्थाःसंकल्पकल्पा घनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूराः॥ क-ण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं य-त्प्रियाभिः प्रणीतं ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम् ८२

(भा० टी०) आयुष्य जलतरंगसी चंचल है यौवन-अवस्थाकी शोभा अल्पकाल रहनेवाली है धन मनके संकल्पसे भी क्षणिक है भोग के समूह वर्षाकालके मेघकी बिजलीसे चंचल हैं और प्यारी स्त्रीको गलेसे लगाना बहुत दिन स्थिर नहीं रहता इसलिये संसारके भयरूपी समुद्रसे पार होनेके लिये ब्रह्ममें चित्तको लीन करो ॥ ८२ ॥

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं लोभाय

मनस्विनः ॥ शफरीस्फरितेनाब्धेः क्षुब्धता जातु जायते ॥ ८३ ॥

(भा० टी०) मनस्वी अर्थात् ब्रह्मविचारवान्के लुभाने को ब्रह्मांडमण्डल तुच्छ है मछलीके उछलनेसे समुद्र नहीं उमगता तात्पर्य यह है की ब्रह्मज्ञानीका चित्त समुद्रवत् गंभीर है त्रैलोक्यकी संपत्ति उसके आगे छोटी मछली है ॥ ८३ ॥

यदासीदज्ञानंस्मरतिमिरसंस्कारजनितं तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि ॥ इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषांसमीभूत दृष्टिस्त्रीभुवनमपि ब्रह्म तनुते ॥ ८४ ॥

(भा० टी०) जब हममें कामदेवके अंधकारसे पैदा हुआ अज्ञान था उससमय यह संपूर्ण जगत् स्त्रीरूपही दीखताथा अर्थात् स्त्रीमें अत्यंत आशक्त थे अब अत्यंत कुशल विवेकरूपी अंजन लगानेसे हमारी दृष्टि समान होगई है इससे वह दृष्टि तीनो भुवनोकोभी ब्रह्मरूप समझती है ॥ ८४ ॥

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या

वनान्तस्थली रम्यः साधुसमागमः शमसुखं काव्येषु रम्याः कथाः ॥ कोपोपाहितबाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते नकिंचित्पुनः ॥ ८५ ॥

(भा० टी०) चन्द्रमाकी किरणें भली लगती थीं हरिततृणवाली बनभूमि सुहावनी देख पडती थी मित्रोंका समागम अच्छा लगता था शृंगार रसवाली काव्यकथा प्यारी जानपडती थी क्रोधके आंसुओंके बून्दसे चंचल और मनभावन प्यारीका मुख सुंदर लगता था पर जब संसारकी अनित्यता चित्तमें निश्चित हुई तब सब रमणीयता जाती रही ॥ ८५ ॥

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितःस्वायत्त चेष्टः सदादानादान विरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः ॥ रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनैः संप्राप्तकन्थासखिर्निर्मानो निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः ॥ ८६ ॥

(भा० टी०) भीख मांगके खाना लोगोंके मध्यमें असंग रहना स्वाधीन चेष्टा करना देने और लेनेसे निवृत्त मार्गमें रत रहना मार्गमें पडे फटे पुराने वस्त्रके टुकडेकी गुदडी ओढना मान और अहंकारसे रहित होना शमसुख अर्थात् ब्रह्मानन्दहीमें इच्छा रखना इस प्रकारसे कोईही तपस्वी स्थिर रहता है ॥ ८६ ॥

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जल भ्रातर्व्योम निबद्ध एव भवतामेष प्रणामाञ्जलिः ॥ युष्मत्संगवशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुर न्निर्मलज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परेब्रह्मणि ॥ ८७ ॥

(० टी०) हेमाया पृथ्वी, हे पांचोंतत्वोंके पिता वायु, हे सखा तेज हे बन्धु जल, और भाई आकाश: तुम्हे हाथ जोड अन्त समय प्रणाम करताहूं तुम्हारे संग से पुण्य बना पुण्य उदय होने से ज्ञान निर्मल हुआ और ज्ञान निर्मल होने से मोह महिमा दूर हुई अब हम परब्रह्ममें लय होते हैं अर्थात् पृथ्वी आदि पंचतत्व रचित देहको ब्रह्मज्ञानमें सहायक समुझ प्रणाम करता हूं क्यों कि फिर तुमसे भेट न होगी ॥ ८७ ॥

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः ॥ आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ ८८ ॥

(भा० टी०) जबतक शरीर अपना पुष्ट और नीरोग है और वृद्धा अवस्था दूर है जबलों इन्द्रियों की शक्ति न्यून न हुई और आयुष्यभी क्षीण नहीं हुई है तबतक बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि अपने कल्याण का यत्न अच्छी भांति से करले जब घर जलने लगा तब कूप खोदनेके उद्योगसे क्या होता है ॥ ८८ ॥

नाभ्यास्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः ॥ कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चंद्रोदये तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ॥ ८९ ॥

(भा० टी०) नम्रजनोंकी प्रसन्नताके योग्य औ वादियोंके समूहको दमन करनेहारी विद्याका अभ्यास हमने न किया और तरवार की धारसे हाथीके मस्तक का पृष्ठभाग काटके स्वर्गलों अपना यश न पहुंचाया और चांदनी रातमें सुन्दर स्त्रीके कोमल अधर पल्लव का रसभी न पान किया तो इस भूमिपर हमारी युवा-अवस्था योंही बीती जैसे शून्य मंदिरमें दीपक जलकर आपही ठंढा होजाता है ॥ ८९ ॥

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं केषां-चिदेतन्मदमानकारणम् ॥ स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये कामातुराणा मतिकामकारणम् ॥ ९० ॥

(भा० टी०) सत्पुरुष को ज्ञान मान मद आदि नष्ट करनेके हेतु हैं और वही ज्ञान दुर्जनों को मद मान उत्पन्न करता है जैसे एकांतस्थान संयमी पुरुषोंको मुक्ति साधन का हेतु होता है और कामातुरों को कामसाधन का कारण होता है ॥ ९० ॥

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरां यौवनं हन्तांगेषु गुणाश्च वंध्य फलतां याता गुणज्ञैर्विना ॥ किं युक्तं

सहसाभ्युपैति बलवान् कालः कृतां तोऽक्षमी ह्याज्ञातंस्मरशासनांघ्रियुगलंमुक्त्वास्तिनान्यागतिः ॥ ९१ ॥

(भा० टी) सब मनोरथ हृदयहीमें जीर्ण होगये कोईभी सिद्ध न हुये युवा अवस्थाभी व्यतीत हुई और गुणग्राहकोंके बिना सब गुण निष्फल होगये अब सर्व नाशक बलवान् काल सहसा कर निकट चला आता है इससे अब यह जाना कि कामनाशक शिवजी के दोनों चरण छोड़ और कोई दूसरी गति नहीं ॥ ९१ ॥

तृषा शुष्यत्यास्येपिबति सलिलं स्वादु सुरभि क्षुधार्तःसन् शालीन् कवलयतिशाकादिवलितान्॥प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं । प्रतीकारो व्याधेःसुखमितिविपर्यस्यति जनः ९२

(भा ० टी ०) जब मनुष्योंका कंठप्याससे सूखने लगताहै तबशीतल सुगंधित जल पीताहै जब क्षुधासे पीडित होता है तो शाकआदि सामग्रीके साथ चावलोंके भोजन करताहै जब कामदेवकी अग्नि प्रचंड होता है तब सुन्दरस्त्रीको हृदयसे लगाता है विचारो तो यह एक २

उपाधिकी औषधि है परन्तु मनुष्योंने इसे उलटा सुख ही समुझलिया है ॥ ९२ ॥

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफ
लैरर्चयित्वाविभो त्वांध्येये ध्यानंनि-
योज्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यंकमूले ॥
आत्मारामःफलाशी गुरुवचनरतस्त्व-
त्प्रसादात्स्मरारे दुःखान्मोक्ष्ये कदाहं
तवचरणरतो ध्यानमार्गैकप्रश्नः॥९३॥

(भा०टी०)हेस्वामीकामदेवके शत्रु शिव! मैं गंगाजलसे स्नानकर सुन्दर पवित्र फूलफलोंसे तुझेपूज पर्वतकीकंदरामें पत्थरकी चट्टानकी शय्यापर बैठ ध्यानयोग्य तुम्हारीमूर्ति ध्यानावस्थित होगुरुके बचन माने आत्माराम औरफलाहारी होके तुम्हारी कृपासे कब मैं इसदुःखसे आपकीदयासे छूटूंगा

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं
तरूणां त्वचःसारंगा सुहृदो ननु क्षि -
तिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः॥ येषांनि-
र्झरमम्बुपानमुचितं रत्यैव विद्यांगना
मन्यंते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न

सेषाञ्जलिः॥ ९४ ॥

(भा ० टी ०) पर्वतकी चट्टान जिनकी शय्या, और कंदराही घर है, वृक्षोंके वल्कलही वस्त्र और वनके हिरनही मित्र हैं वृक्षोंके कोमल फलादिभोजनसे जीवन और वनके झरनेका स्वच्छजल पानहै, विद्यारूपी स्त्रीहीसे जिनकी प्रीति है उन पुरुषोंको हम परमेश्वर मानतेहैं जिन्होंने सेवा करनेके हेतु औरोंको प्रणाम न किया ॥ ९४ ॥

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चु-
म्बिनीवच्छटायां सद्वृत्तिंकल्पयन्त्यां
वटविटपभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च ॥
कोऽयं विद्वान् विपत्तिज्वरजनितरु-
जातीव दुःश्वासिकानां वक्रं वीक्षेत
दुस्थे यदि हि न बिभृयात्स्वे कुटुम्बे-
ऽनुकम्पाम् ॥ ९५ ॥

(भा०टी०) महादेव काशिर जिसका तट है और जो गंगा वट की डालियों के बल्कल और उत्तम २ फलोंसे भलीप्रकार निर्वाह करसकती है ऐसी श्री गंगाजी के विद्यमानरहते और यदि अपने कुटुंबपर दया न करे

तो ऐसा कौन विद्वान् है जो ऐसी स्त्रियोंके मुखको देखै जो विपत्तिके ज्वरसे पैदाहुये लंबे २ श्वासोंको लेतीहैं अर्थात् कुटुंब बढानेकी इच्छाही उक्त स्त्रियों का मुख दिखाती है नहींतो गंगातटपरही सर्वानन्द है ॥ ९५ ॥

उद्यानेषु विचित्रभोजन विधिस्तीव्रातितीव्रं तपः कोपीनावरणं सुवस्त्रमितं भिक्षाटनं मण्डनम्॥ आसन्नं मरणं च मङ्गलसमं यस्यां समुत्पद्यते तांकाशीं परिहृत्य हन्तविबुधैरन्यत्र किं स्थीयते॥ ९६ ॥

(भा०टी०)उपवनोंमें नानाप्रकारके भोजन बनाय के खाना और जहां कठिन से कठिन तप और लंगोटी पहिननाही परम सुन्दर वस्त्र और भीख मांगनाही जहां भूषण है और मृत्यु आनाही जहां परममङ्गल उत्पन्न होताहै ऐसी काशीको छोड़ पण्डित लोग अन्यत्र क्यों बसतेहैं ॥ ९६ ॥

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदिस्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः चेतस्तान

प्रहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितुर्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदं ॥ ९७ ॥

(भा० टी०) अभी समय नहीं महाराज एकान्तमें बैठे कुछ विचार कर रहे हैं अभी सोते हैं ड्योढीपरसे उठो तुम्हे बैठे देखेंगे तो प्रभु हमपर क्रोध करेंगे ऐसे वचन जिनके द्वार द्वारपाल बोलते हैं उन्हें त्याग कर हे चित्त ! विश्वेश्वरकी शरणमें जा जिसके द्वारपर कोई रोकनेवाला नहीं वहां निर्दय और कठोर वाक्य नहीं सुनने में आते और जो अनंत सुखदाई है ॥ ९७ ॥

प्रियसखि विपद्दण्डव्रातप्रतापपरंपरातिपरिचपले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः ॥ मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालवद्भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥ ९८ ॥

(भा० टी०) हे प्यारी सखी ! बुद्धि खल अज्ञानी ब्रह्मा विपत्तियोंकी पंक्ति के समूहका जो प्रताप उसकी परंपरासे अत्यंत चंचल चिंतारूपी चक्रपर रखकर इस प्रकार हमारे मनको भ्रमाता है जैसे चतुर कुह्मार मिट्टी

का पिंड बनाकर भ्रमाताहै और उसके अनेक पात्र बनाता है न जाने अज्ञानी ब्रह्मा इसहमारे मनके पिंड से क्या २ बनावेगा अर्थात् इस ब्रह्माकी इच्छाको कोई नहीं जान सकता ॥ ९८ ॥

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ॥ तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ॥ ९९ ॥

(भा० टी०) जगदीश्वर महेश्वर अर्थात् शिव और जगदात्मा जनार्दन अर्थात् विष्णु इन दोनों में मुझे कुछ भेदबुद्धि नहीं तथापि जिनके भालमें तरुण चंद्र विराजमान उन्हींमें हमारी प्रीति है ॥ ९९ ॥

रेकंदर्पकरं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारवै रेरेकोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि ॥ मुग्धे स्निग्धविदग्धक्षेपमधुरैर्लोलैःकटाक्षैरलं चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते १००

(भा० टी०) रेकामदेव ! धनुषकी टंकारके शब्दों से बुरे हाथको क्यों उठाता है रे कोकिल ! तू वृथा

क्यों बोलतीहै तेरे पंचमस्वर से कुछ न होगा और हे मुग्धे (मूर्ख) स्त्री तेरे स्नेहयुक्त और मधुर कटाक्षों सेभी कुछ न होगा अर्थात् तुम सब मेरे ऊपर प्रहार नहीं करसकते क्योंकि अब हमारे चित्तने शिवजी के चरणारविंदको चूमकर अमृत का पान कर लिया है ॥ ॥ १०० ॥

कौपीनं शतखण्डजर्ज्जरतरं कन्था पुन-स्ताद्दशी निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यम शनंशय्याश्मशाने वने ॥ मित्रामित्र समानताति विमलाचिन्तातिशून्या-लये ध्वस्ताशेषमदप्रमाद मुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥ १०१ ॥

(भा० टी०) ऐसा योगी सुखसे रहता है जिनके शतखंडकी जीर्ण कौपीन है और कंथा भी ऐसीही शत-खंडकी है और निश्चिंत सुख साध्य भिक्षा है और स्मशान में तथा बनमें जिनकी शय्या है और शत्रु में मित्र में समानता है और शून्यालय अत्यन्त निर्मल ध्यान लक्षण चिन्ता है ॥ १०१ ॥

भोगाभंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं

भवस्त त्कस्यैव कृते परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः ॥ आशापाश-शतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां कामोच्छित्तिवशेस्वधामानियदिश्रद्धे-यमस्मद्वच ॥ १०२ ॥

(भा० टी०) जितने भोग हैं उनकी वृत्ति नाश-वान् है उनके संसर्गसे भव है अर्थात् बारम्बार जन्म मरण है यह जानकरभी हे लोगों ! किसालिये भोगरूपी चक्रमें भ्रमतेहो ऐसी चेष्टासे क्या फल मिलना है यदि हमारे वचनका विश्वास मानो तो कामनाशक शिव स्वयं प्रकाश रूप हैं उनमें जो आशापाश छेदनकर शुद्ध हो रहा है ऐसा चित्त निरन्तर लगावो ॥ १०२ ॥

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायतामानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशंकमङ्केशयाः ॥ अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतटक्री-डाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परि क्षीयते ॥ १०३ ॥

(भा० टी०) जो उत्तम पुरुष पर्वतकी कंदरामें रहते और परब्रह्मकी ज्योतिका ध्यान करतेहैं जिनके आनन्दका आंसू पक्षी लोग निडर हो गोदमें बैठकर पीते हैं उनको धन्यहै और हमलोगों की तो अवस्था केवल मनोरथहीके मंदिर की बावडीके तटमें जो क्रीडा का बन तिसमें लीलाके कौतुक करतेही क्षीण होतीहै तात्पर्य्य यह है कि नानाप्रकारके मिथ्या कल्पनाही में जन्म व्यतीत होता है वास्तवमें कोई मनोरथ सिद्ध नहीं होता ॥ १०३ ॥

आघ्रातंमरणेन जन्म जरया विद्युच्चलं यौवनं संतोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढांगनाविभ्रमैः॥ लोकैर्मत्सरिभिर्गुणावनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनैरस्थैर्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्तं न किं केन वा ॥ १०४ ॥

(भा० टी०) मृत्युने जन्मको बुढापे ने युवाअवस्था को,धनकी इच्छाने संतोषको सुंदरस्त्रियोंके हावभावने शान्तिसुखको, मत्सरी (जो पराई बडाई न सहै) लोगोंने, गुणको सर्पोंने बनभूमिको, दुर्जनोंने राजाको और चंचलता ने धैर्यको, योंहीं इस संसारमें किसने किसको नहीं

ग्रास कर रक्खाहै ॥ १०४ ॥

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारो-
ग्यमुन्मूल्यते लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र
विवृतद्वारा इव व्यापदः ॥ जातंजात
मवश्यमाशु विवशं मृत्युः करोत्यात्म
सात्तात्किंनाम निरंकुशेन विधिनाय-
न्निर्मितं सुस्थितम् ॥ १०५ ॥

(भा० टी०) सैंकडों मानासिक दैहिक रोगव्याधिने मनुष्योंकी आरोग्यताको मूलसे उखाड डालाहै जहां द्रव्य बहुत होताहै वहां विपत्ति द्वार तोडके आपडतीहै जो जो जन्मताहै उसे मृत्यु बलात्कारसे वशमें अवश्य कर लेती हैं ऐसी कौन वस्तु है कि जिसे निरंकुश विधाताने स्थिर बनाई है ॥ १०५ ॥

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः
स्थीयते गर्भ मध्ये कान्ताविश्लेषदुःख
व्यतिकरविषमे यौवने विप्रयोगः ॥
नारीणामप्यवज्ञा विलसति नियतं
वृद्धभावोऽप्यसाधः संसारे रे मनुष्या

वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् ॥ १०६ ॥

(भा० टी०) अपवित्र मलमूत्रके स्थानमें बडे कष्ट से हाथ पैर बंधे हुए बाल अवस्थामें गर्भ बन्दीगृहमें रहता है फिर युवा अवस्थामें स्त्रियों के वियोग दुःख से क्लेशित रहता है और वृद्धावस्थामें नारियोंसे निरादर पाकर नीचा सिर किये शोचमें पडा रहताहै तो हे मनुष्यो इस संसार में किञ्चित् मात्रभी सुख होय तो हमसे कहो अर्थात् सुख का लेशभी नहीं है ॥ १०६ ॥

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः ॥ शेषं व्याधिवियोग दुःख सहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारितरंगचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनां ॥ १०७ ॥

(भा० टी०) प्रथम तो मनुष्यकी आयुष्यही सौ वर्षकी प्रमाण हुई है उसमें से आधी पचास वर्ष ही में रात्रिको व्यतीत होती है शेष आधीके तीन करो उसमेंसे प्रथम अंश बालपनकी अज्ञानता

है दूसरा जरा (वृद्धा) अवस्थामें जाताहै जो बची सो व्याधि, वियो, गदु:ख, पराई सेवा, कलह, हर्ष, शोक, हानि, लाभ, इत्यादि नानाक्लेशमें व्यर्थ व्यतीत होता है यदि सौ वर्ष पर्यन्त जीवन हो तो भी लेखा से सुखके दिन कुछ नहीं निकलते यह तो जलतरंगके समान जीवन है इसमें प्राणियोंको कहां से सुख प्राप्त होगा ॥१०७॥

ब्रह्मज्ञान विवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं यन्मुंचत्युपभोगकांचनधनान्येकां ततो निःस्पृहा ॥ न प्राप्तानि पुरा न संप्रति न च प्राप्तो दृढप्रत्ययो वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्ता वयं ॥ १०८ ॥

(भा० टी०) ब्रह्मज्ञानके विवेकी निर्मल बुद्धिवान् और सत्पुरुष यह बड़ा कठिन व्रत धारण करते हैं कि उपभोग भूषण वस्त्र चन्दन वनिता शय्या तांबूल और धन इत्यादि विषयक सामग्री सब त्याग देते हैं और निरन्तर निस्पृह रहते हैं हमको तो ये वस्तु न तो पहिले प्राप्त हुईं न अब इच्छामात्रमे ग्रहण होरहे हैं उसेभी हम परित्याग नहीं करसक्ते अर्थात् इनकी आशाका भी हमसे त्याग नहीं होता ॥ १०८ ॥

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ॥ आयुः परिस्रवति भिन्न घटादिवाम्भो लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ १०९ ॥

(भा० टी०) वृद्धावस्था वाघिनीसी सन्मुख खडीहै सब रोग शत्रुओंके समान देहपर दण्डप्रहार कररहे हैं आयु प्रतिदिन इस प्रकार निकलती जाती है जैसे फूटे घडेमे पानी निकलता जाय, तिसपरभी लोग जिसमें अपना बुरा हो वही काम करते जाते हैं यह बडा आश्चर्य है ॥ १०९ ॥

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणां भुवः ॥ तदपितत्क्षणभंगि करोति चेदहह कष्टम पंडितताविधेः ॥ ॥ ११० ॥

(भा० टी०) बडे खेद की बात है कि ब्रह्माकीभी यह मूर्खता कि गुणों की खान और संपूर्ण पृथ्वी के भूषण रत्नरूप पुरुषको पैदा करता है और फिर उसको क्षणभंगुर करदेता है—उसको तो सदैव स्थिर बनाता

तो उसकी पंडिताई थी ॥ ११० ॥

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलिर्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्रं च लालायते ॥ वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोप्यमित्रायते ॥ १११ ॥

(भा० टी०) बडा खेद है कि वृद्धमनुष्य की यह दशा होतीहै कि गात सुकड जाता है गति (चलना) नष्ट होजाती है दांतोंकी पंक्ति गिरजातीहै और दृष्टि नष्ट होजाती है बहिरा होजाता है मुखसे लाल टपकने लगती है और बंधुजन वाक्यका आदर नहीं करते और स्त्रीभी सेवा नहीं करती और पुत्रभी शत्रुके समान हो जाता है इससे ईश्वरकी भक्तिही श्रेष्ठ है ॥ १११ ॥

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च संपूर्णविभवः ॥ जराजीर्णैरंगैर्नट इव वलीमंडिततनुर्नरः संसारांते बि-

शति यमधानीजवनिकाम् ॥ ११२ ॥

(भा० टी०) यह मनुष्य क्षणमें बालरूप और क्षण में युवा हो रसिक कामरूप क्षणमें दरिद्र क्षणमें धनाढ्य क्षणमें बुढापेमे जीर्ण हो और सिकुडे चमडे ऐसे रूप दिखाकर फिर नट व बहुरूपियोंके समान यमराज के नगरकी ओटमें छिप जाता है ॥ ११२ ॥

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ॥ तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांति दिवसाः क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥ ११३ ॥

(भा० टी०) सर्प वा हार बलवान् शत्रु वा मित्र मणि और पाषाण पुष्परचित शय्या वा पत्थरकी चट्टान तृण वा स्त्रियोंके समूहमें समदर्शी होकर पवित्रवन में शिव शिव जपते हमारे दिन कहीं व्यतीत होंगे हम यही चाहते हैं ॥ ११३ ॥

॥ इति श्रीभर्तृहरिकृतं वैराग्यशतकं सटीकं संपूर्णम् ॥

इति श्रीभर्तृहरिकृतं शतकत्रयं संपूर्णम् ॥